रसीदी टिकट

अमृता अपने निजी कक्ष में   १९७६

अमृता प्रीतम की आत्मकथा

इमरोज़ को
और अपने दोना बच्चो—
क-दला और नवराज को

एक दिन खुशवन्तसिंह ने बातों-बातों में कहा, ' तेरी जीवनी का क्या है बस एक आध हादसा। लिखने लगो तो रसीदी टिकट की पीठ पर लिखी जाए।

रसीदी टिकट शायद इसलिए कहा कि बाकी टिकटों का साइज़ बदलता रहता है पर रसीदी टिकट का वही छोटा-सा रहता है।

ठीक ही कहा था—जो कुछ घटा, मन की तहों में घटा, और वह सब नज़्मों और नावलों के हवाले हो गया। फिर बाकी क्या रहा ?

फिर भी कुछ पंक्तियां लिख रही हूं—कुछ ऐसे जैसे ज़िन्दगी के लेखे जोखे के कागज़ों पर एक छोटा सा रसीदी टिकट लगा रही हूं—नज़्मों और नॉवलों के लेखे जोखे की कच्ची रसीद को पक्की रसीद करने के लिए।

अमृता प्रीतम

क्या यह क़यामत का दिन है ?

ज़िन्दगी के कई वे पल जो वक़्त की कोख से जन्मे और वक़्त की क़ब्र मे गिर गए आज मेरे सामने खड़े हैं

यह सब क़ब्रें कैसे खुल गयीं ? और यह सब पल जीते जागते क़ब्रों में से कैसे निकल आए ?

यह ज़रूर क़यामत का दिन है

रसीदी टिकट

यह १६१८ की कब्र म से निकला हुआ एक पल है—मेरे अस्तित्व से भी एक बरस पहले का। आज पहली बार देख रही हू पहले सिर्फ सुना था।

मेरे मा बाप दोनो पचखड भमोड के स्कूल म पढाते थ। वहा के मुखिया बाबू तेजासिहजी की बेटिया उनके विद्यार्थिया म थी। उन बच्चियो को एक दिन न जाने क्या सूझी दोना न मिलकर गुरुद्वार मे कीतन किया प्रार्थना की और प्रार्थना के अन्त म कह दिया, दो जहाना के मालिक! हमारे मास्टरजी के घर एक बच्ची बख्श दो।

भरी सभा मे पिताजी ने प्राथना के य शब्द सुन तो उन्ह मेरी होने वाली मा पर गुस्सा आ गया। उन्होने समझा कि उन बच्चिया ने उसकी रजामन्दी से यह प्रार्थना की है। पर मा को कुछ मालूम नही था। उन्ही बच्चिया न ही बाद म बताया कि अगर हम राज बीबी से पूछती तो वह शायद पुत्र की कामना करती—पर वे अपन मास्टरजी के घर लडकी चाहती हैं अपनी ही तरह एक लडकी।

यह पल अभी तक उसी तरह चुप है—कुदरत के भेद को होठो म बन्द करके होले स मुसकराता पर कहता कुछ नही। उन बच्चिया ने यह प्रार्थना क्या की? उनके किस विश्वास न सुन ली? मुझे कुछ नही मालूम। पर यह सच है कि साल के अन्दर राज बीबी राज मा' बन गयी।

और उससे भी दस बरस पहले—

समय की कब्र म सोया हुआ एक वह पल जाग उठा है जब बीस बरस की राज बीबी ने गुजरावाला मे साधुओ के एक डेरे म माथा टेका था और उसकी नजर कुछ उतन ही बरस के एक नद' नाम के साधु पर जा पडी थी।

साधु नद साहूकारा का लडका था। जब छह महीने का था तब मा लक्ष्मी' मर गयी थी। उसकी नानी ने उसे अपनी गोद म डाल लिया था और अनाज फटकने वाली एक औरत के दूध पर पाल लिया था। नद के चार बडे भाई थे और एक बहन—पर भाइया म स दो मर गए एक भाई 'गोपालसिह घर गहस्थी छोडकर शराबी हो गया और एक 'हाकिमसिह साधुओ के डेरे जाकर बठ गया। नद का सारा स्नेह अपनी बहन हाको से ही गया था।

बहन बडी थी बेहद खूबसूरत। जब ब्याह हुआ तब अपन पति बेलासिह को देखकर उसन एक जिद पकड ली कि उससे उसका काई सबध नही। गौन पर ससुराल जाने की जगह उसने अपने मायके म एक तहखाना खुदवा लिया और चालीसा खीच लिया। गरुआ बाना पहन लिया। रात को कच्चे चन पानी म भिगो देती और दिन म खा लेती। नद न भी बहन की रीस म गेरए वस्त्र पहन लिय। पर बहन बहुत दिन जीवित नही रही। उसकी मत्यु से नद को लगा कि ससार से सच्चा वैराग्य उसे अब हुआ है। अपने साहूकार नाना सरदार अमरसिंह

ननदेव म मिली हुई भारी जायदाद का त्यागकर वह सन्त दयालजी के डेरे म जा बठा। संस्कृत सीखी ब्रजभाषा सीखी हिकमत सीखी और डेरे म 'बालका साधु' कहलाने लगा। बहन जब जीवित थी मामा मामी ने वहीं अमृतसर म नद की सगाई कर दी थी, नद ने वह सगाई छोड़ दी और वरागी होकर कविताए लिखने लगा।

राज बीबी गाव माणा जिला गुजरात की थी—अदला-बदली म ब्याही हुई। जिससे ब्याह हुआ था, वह फौज म भरती होकर गया था, फिर उसकी कोई खबर नहीं आयी। उदास और निराश वह गुजरावाला के एक छोटे से स्कूल म पढ़ाती थी। स्कूल जाने से पहले अपनी भाभी के साथ दयालजी के डेरे म माथा टेकने आया करती थी। भाई मर गया था, भाभी विधवा थी। पर अब दोनो अकेली और उदास एक स्कूल म पढाती थी एक साथ रहती थीं। एक दिन जब दोनो दयालजी के डेरे आयीं, जोर से मेह बरसने लगा। दयालजी ने मेंह का समय बिताने के लिए अपने 'बालका साधु' से कविता सुनाने के लिए कहा। वह सदा आखें मूदकर कविता सुना करते थे। उस दिन जब आखें खोली तो देखा—उनके नद की आखें राज बीबी के मुह की तरफ भटक रही हैं। कुछ दिनो बाद उन्होने राज बीबी की व्यथा सुनी और नद से कहा, नद बेटा! जोग तुम्हारे लिए नहीं है। यह भगवे वस्त्र त्याग दो और गृहस्थ आश्रम म पैर रखो।'

यही राज बीबी मेरी मा बनी और नद साधु मेरे पिता। नद ने जब गृहस्थ आश्रम स्वीकार किया, अपना नाम करतारसिंह रख लिया। कविता लिखते थे, इसलिए एक उपनाम भी—पीयूष! दस वष बाद जब मेरा जन्म हुआ, उन्होंने पीयूष शब्द का पजाबी म उल्था करके मेरा नाम अमृत रख दिया और अपना उपनाम हितकारी' रख लिया।

फकीरी और अमीरी दोनो मेरे पिता के स्वभाव मे थीं। मा बताया करती थी—एक बार उनका एक गुरु भाई (सन्त दयालजी का एक और चेला), सन्त हरनामसिंह कहने लगा कि उसका बडा भाई ब्याह करवाना चाहता है। अच्छी भली सगाई होते होते रह गयी, क्योंकि उसके पास रहने के लिए अपना मकान नहीं है। पिताजी के पास अभी भी अपने नाना की जायदाद म से एक मकान बचा हुआ था कहने लगे "अगर इतनी सी बात के पीछे उसका ब्याह नहीं होता तो मैं अपना मकान उसके नाम लिख देता हू"—और अपना एकमात्र मकान उसके नाम लिख दिया। फिर सारी उम्र किराए के मकानो म रहे अपना मकान नहीं बना सके पर मैंने उनके चेहरे पर कोई शिकन कभी नहीं देखी।

पर मैंने उनके चेहरे पर एक बहुत बडी पीडा की रेखा देखी—मैं कोई दस ग्यारह बरस की थी मा मर गयी। वह जीवन से फिर विरक्त हो गये। पर मैं उनके लिए एक बहुत बडा बन्धन थी। मोह और वैराग्य दोनो उन्हें एक दूसरे से

विपरीत दिशा म खींचते थ। कई पल ऐसे भी आते थे—मैं बिलख उठती, मेरी समझ म नही आता था मैं उन्ह स्वीकार थी या अस्वीकार

अपना अस्तित्व—एक ही समय म, चाहा और अनचाहा लगता था

काफिये रदीफ का हिसाब समझाकर मेरे पिता ने चाहा था मैं लिखू। लिखती रही—मेरा खयाल है पिता की नजर म जितनी भी अनचाही थी, वह भी चाही बनने के लिए।

आज आधी सदी के बाद सोचती हू—जसे फकीरी और अमीरी दोनो एक ही समय म, मेरे स्वभाव म हैं और यह स्वभाव, अपने नैन नक्श की तरह मुझे पिता से मिला है शायद उनकी नजर भी मेरी नजर म शामिल है—कभी यही पता नही लगता कि मैं अपनी नजर म स्वीकार हू या नही—शायद इसीलिए सारी उम्र लिखती रही कि मेरी नजर म जो कुछ मेरा अनचाहा है वह सारा मेरा चाहा बन जाए

जस तब भी दुनिया के बारे मे नही सोचती थी—सोचती थी कि पिता मेरे साथ खुश हो आज भी दुनिया के बारे मे नही सोचती—सिफ सोचती हू कि अपना आप मेरे साथ खुश हो

पिता से कभी झूठ नही बोला अपने आप से भी नही बोल सकती

यह एक वह पल है—

जब घर म तो नही, पर रसोई म नानी का राज होता था। सबसे पहला विद्रोह मैंने उसके राज मे किया था। देखा करती थी कि रसोई की एक परछत्ती पर तीन गिलास अय बरतनो स हटाए हुए सदा एक कोने मे पडे रहते थे। *ये गिलास सिफ तब परछत्ती स उतारे जाते थ जब पिताजी के मुसलमान* दोस्त आते थे और उन्ह चाय या लस्सी पिलानी होती थी और उसके बाद मांज-धोकर फिर वही रख दिए जाते थे।

सो उन तीन गिलासो के साथ मैं भी एक चौथे गिलास की तरह रिल मिल गयी और हम चारो नानी से लड पडे। वे गिलास भी बाकी बरतनो को नही छू सकते थे मैंने भी ज़िद पकड ली कि मैं और किसी बरतन मे न पानी पीऊगी, न दूध चाय। नानी उन गिलासो को खाली रख सकती थी लेकिन मुझे भूखा या प्यासा नही रख सकती थी सो बात पिताजी तक पहुच गयी। पिताजी को इससे पहले पता नही था कि कुछ गिलास इस तरह अलग रखे जाते हैं। उन्ह मालूम हुआ तो मेरा विद्रोह सफल हो गया। फिर न कोई बरतन हिन्दू रहा न मुसलमान।

उस पल न नानी जानती थी न मैं कि बडे होकर जिदगी के कई बरस जिस से मैं इश्क करूगी वह उसी मजहब का होगा जिस मजहब के लोगो के लिए घर

के बरतन भी अलग रख दिए जाते थे। होनी का मुह कभी देखा नहीं था, पर सोचती हू उस पल कौन जाने उसकी ही परछाइ थी जो बचपन मे देखी थी

परछाइया बहुत बडी हकीकत होती हैं।

चहरे भी हकीकत होते हैं। पर कितनी देर ? परछाइया, जितनी देर तक आप चाहें चाहे तो सारी उम्र। बरस आते हैं गुजर जाते हैं रुकते नहीं। पर कई परछाइया, जहा कभी रुकती हैं, वही रुकी रहती हैं

यू ता हर परछाइ किसी काया की परछाइ होती है काया की मोहताज। पर कइ परछाइ ऐसी भी होती हैं जो इस नियम के बाहर होती हैं, काया से भी स्वतत्र।

और यू भी होता है कि हर परछाईं न जाने कहा से और किस काया से टूटकर, तुम्हारे पास आ जाती है और तुम उस परछाइ का लेकर दुनिया मे घूमते रहते हो और खोजते रहते हो कि यह जिस काया से टूटी है वह कौन-सी है ? गलतफहमिया का क्या है ? हो जाती हैं। तुम यह परछाईं गरो के गले से लगाकर भी देखते हो, न जाने उसी के माप की हो ! नहीं होती, न सही। तुम फिर उसे—अधरे से को—पकडकर, वहा स चल देते हो

मेरे पास भी एक परछाइ थी।

नाम से क्या होता है, उसका एक नाम भी रख लिया था—राजन ! घर म एक नियम था कि सोने से पहले कीतन सोहिले[1] का पाठ करना होता था, इसके सबध म पिताजी का विश्वास था कि जस जसे इस पढते जाते हो तुम्हारे गिद एक किला बनता जाता है और पाठ के समाप्त होते ही तुम सारी रात एक किले की सुरक्षा मे रहत हा और फिर सारी रात बाहर स किसी की मजाल नही होती कि वह उस किले म प्रवेश कर सके । तुम हर प्रकार की चिन्ता से मुक्त होकर सारी रात सो सकते हो।

यह पाठ सोते समय करना होता था। आखें नीद से भरी होती थी, इतनी कि नीद के गलबे म यह अधूरा भी रह सकता था। सो, इस सबध मे उनका कहना था कि अतिम पक्ति तक इस पूरा करना ही है। अगर अतिम पक्तियां छूट जाए तो किलेबदी म कोई कोर-कसर रह जाती है, इसलिए वह पूरी रक्षा नहीं कर सकता। सो अतिम पक्ति तक यह पाठ करना होता था।

बहुत बच्ची थी। चिन्ता हुई कि इस पाठ के बाद मेरे गिद किला बन जाएगा तो फिर राजन मेरे सपने मे किस तरह आएगा ? मैं किले के अदर होऊगी, वह किले के बाहर रह जाएगा सो, सोचा कि पाठ कठस्थ है अपनी

---

१ गुरु ग्रथ का एक अश विशेष।

चारपाई पर बैठकर धीरे धीरे करना है मैं याद से इसकी कुछ पंक्तियां छोड दिया करूंगी, किला पूरी तरह बंद नहीं होगा, और वह उस खुली जगह से होकर आ जायगा

पर पिताजी ने इस नियम का रूप बदल दिया। इसकी जगह सब अपनी-अपनी चारपाई पर बैठकर अपना-अपना पाठ करें उन्होंने यह नियम बना दिया कि मैं अपनी चारपाई पर बैठकर ऊंचे स्वर में पाठ करूंगी और सब अपनी अपनी चारपाई पर बैठ उसे सुनेंगे। यह शायद इसलिए कि दूर रिश्ते में एक लडका और एक छोटी बच्ची पिताजी के पास ही रहते और पढ़ते थे, और उस छोटी बच्ची को यह पाठ याद नहीं होता था।

सो पाठ की कोई भी पंक्ति छोड़ी नहीं जा सकती थी। एक दो बार छोडने की कोशिश की, पर पिताजी ने भूल की शोध करवाकर व पंक्तियां भी पढ़वा दीं। फिर बहुत सोचकर यह युक्ति निकाली कि 'कीर्तन सोहिले' का पाठ करने से पहले मैं राजन को ध्यान करके उसे अपने पास बुला लिया करूं ताकि वह किले की दीवारों के निर्माण होने से पहले ही किले के अन्दर आ जाया करे।

तब दस बरस की थी आज चालीस बरस के बाद उस बात को सोचती हूं तो लगता है जिस भी अस्तित्व के लिए यह लगन थी वह वृथा नहीं गयी। मेरे गिर्द सुरक्षात्मक किले बने भी हैं और टूटे भी, पर उसका अस्तित्व किसी न किसी रूप में सदा मेरे साथ रहा है—कभी मनुष्य के रूप में, कभी कलम की सूरत में और कभी ईश्वर की जात की तरह एक से अनेक होते हुए—किसी किताब के पन्नों में से भी उभरता है और किसी कनवस में से भी निकलकर बाहर उतर आता है। और धुएं की लकीरें में से जिन्न के प्रकट होने की तरह यह कभी किसी गीत के स्वरों से भी निकल आता है किसी फूल की खिलती हुई पखुडी में से भी और समुद्र के पानियों में हिलते हुए चांद के साये से भी। और घोर एकाकीपन के समय यह नदियां को चीरकर भी मिला है—मेरे शरीर की नाड़ियों में बहते हुए लहू की नदियों को चीरकर, और इसके अस्तित्व के साथ उपरामता का जर्द रंग भी सुर्ख हो जाता है।

यह—अब हाड मांस की दिखाई देने वाली काया से लेकर, रंगों और सुगंधों में से गुजरता विचारों और सपनों की उस सीमा तक व्यापक हो गया है जहां किसी राह चलते की छोटी सी अच्छाई भी उसका, अस्तित्व मालूम होती है और आंखों में पानी भर आता है। मेरे लिए निराकार कुछ भी नहीं है। हर वस्तु का अस्तित्व हाड मांस की तरह है जिसे हाथ से छू सकती हूं जिसका अहसास मेरे शरीर में से गुजर सकता है।

छुटपन में जब हरगोविन्दजी या गुरु गोबिन्दसिंह का सपना आता था

तो मैं उनके घोड़े को, या बाज को, या गले मे पड़ी हुई तलवार को सदा हाथ से छूकर देखती थी, दूर से प्रणाम करके नहीं। उसी तरह फूलों और पत्तियों की टहनियां मैं बांहों में भर लेती थी। अब भी—किसी से गले मिलने की तरह। सारा शरीर सिहर उठता है और उनकी सरसराहट से मेरा सांस तेज़ हो जाता है।

बहुत बरसों की बात है—एक बार कोई पास बैठा हुआ था। उसकी जेब में जो रूमाल था वह मैला था। उसे रूमाल की ज़रूरत पड़ी तो नया रूमाल देकर उसका मैला रूमाल ले लिया। पास रख लिया। वह बहुत बरस तक मेरे पास रहा। जब कभी उस रूमाल पर हाथ पड़ जाता था माथे की नसें कस जाती थीं।

कुछ बीज न जाने कैसे होते हैं कि एक बार लहू-मांस में उग जाएं तो फिर चाहे कैसी आंधियां आएं, कैसा ही सूखा पड़ जाए, उनके पत्ते झड़ जाएं, टहन टूट जाएं, पर वे जड़ों से नहीं उखड़ते।

एक 'किसी चेहरे का तसव्वुर,' और दूसरा 'अक्षरों का अदब'—ऐसे ही बीज थे जो बाल अवस्था में मेरे अन्दर उग गए। फिर विश्वास टूटे, और ऐसे टूटे कि, सोचती हूं इन दोनों पेड़ों को जड़ों से उखड़ जाना चाहिए था। कभी लगता भी है कि इनका नाम निशान तक नहीं रहा पर मन की सूखी मिट्टी में से फिर इनकी कोंपलें निकल आती हैं, टहनियां बन जाती हैं, उन पर बौर आ जाता है और मेरे सांसों में इनकी सुगन्ध आने लगती है।

इन जादुई पेड़ों का एक बीज मैंने अपने हाथों से बोया था पर दूसरा मेरे पिता ने। किसी किताब का पृष्ठ धरती पर पड़ा हो तो वह उसे अदब से उठा लेते थे। अगर धूल से भरा पैर पृष्ठ पर आ जाता तो वह नाराज़ होते थे। सो अक्षरों का अदब मेरे मन में गहरा पड़ गया, और साथ ही उनका जिनके हाथ में कलम होता है। देखती भी थी गुरबानी के प्रकांड विद्वान् भाई काहनसिंहजी पिताजी के मित्र थे। वह जब कभी आते, घर की दहलीज़ भी अदब से भर जाती। पिताजी के गुरु, संस्कृत के विद्वान् दयालजी का चित्र सदा पिताजी के सिरहाने की ओर लगा रहता था। उस ओर पांव करने की मनाही थी। सो, बड़ी हुई तो अपने समय के लेखकों के लिए भी मेरे पास अदब ही था। परन्तु अपने समकालीन लेखकों से जितने उदास अनुभव मुझे हुए हैं हैरान हूं कि अक्षरों और कलमों के अदब का जादुई पेड़ जड़ से क्यों सूख नहीं गया?

लेकिन सोचती हूं, क्या मेरे समकालीन केवल वही हैं जिनसे वास्ता पड़ा? दूरी और काल की सीमा से परे भी कोई हैं, कितने ही वाज़ानज़ाकिस जिन्होंने मेरे इस अक्षरों और कलमों के अदब वाले पेड़ को सींचा है। फिर यह पेड़ भी अगर हरा रह गया है तो हैरान क्यों हूं?

३१ जुलाई, १६३०

कोई ग्यारह बरस की थी जब अचानक एक दिन मा बीमार हो गयी। बीमारी कोइ मुश्किल से एक सप्ताह रही होगी जब मैंने देखा कि मा की चारपाई के इद गिद बठे हुए सभी के मुह घबराए हुए थे।

'मेरी बिना कहा है ?' कहते हैं एक बार मेरी मा ने पूछा था और जब मेरी मा की सहेली प्रीतम कौर मेरा हाथ पकडकर मुझे मा के पास ले गयी तो मा को होश नही था।

'तू ईश्वर का नाम ले, री ! कौन जाने उसके मन मे दया आ जाए। बच्चा का कहा वह नही टालता 'मेरी मा की सहेली, मेरी मौसी, ने मुझसे कहा।

मा की चारपाई के पास खडे हुए मेरे पर पत्थर के हो गए। मुझे कई वर्षों से ईश्वर से ध्यान जोडने की आदत थी और अब जब एक सवाल भी सामने था ध्यान जोडना कठिन नही था। मैंने न जाने कितनी देर अपना ध्यान जाडे रखा और ईश्वर से कहा— मेरी मा को मत मारना।'

मा की चारपाई से अब मा की पीडा से कराहती हुई आवाज नही आ रही थी, पर इद गिद बठे हुए लोगो म एक खलबली सी पड गयी थी। मुझे लगता रहा—'बेकार ही सब घबरा रहे हैं अब मा का पीडा नही हो रही है। मैंने ईश्वर से अपनी बात कह दी है—वह बच्चा का कहा नही टालता।

और फिर मा की चीखो की आवाज नही आयी पर सारे घर की चीखें निकल गयी। मेरी मा मर गयी थी। उस दिन मेरे मन म रोष उबल पडा—'ईश्वर किसी की नही सुनता, बच्चो की भी नही।'

यह वह दिन था जिसके बाद मैंने अपना वर्षों का नियम छोड दिया। पिता जी की आज्ञा बडी कठोर होती थी पर मेरी जिद ने उनकी कठोरता से टक्कर ले ली

ईश्वर कोई नही होता।'

ऐसे नहीं कहते।'

क्या ?

वह नाराज हो जाता है।

ता हो जाए ! मैं जानती हू ईश्वर कोई नही है।

तू कस जानती है ?'

'अगर वह होता तो मेरी बात न सुनता ?'

तूने उससे क्या कहा था ?'

'मैंने उससे कहा था, मेरी मां को मत मरना।'

'तूने उसे कभी देखा है ? वह दिखाई थोडे ही देता है।'

पर उसे सुनाई भी नही देता ?'

पूजा पाठ के लिए पिताजी की आज्ञा अपनी जगह पर अडी हुई थी और मेरी जिद अपनी जगह। कभी उनका गुस्सा ज्यादा ही उबल पडता और वह मुझे पालथी लगवाकर बिठा देते—'दस मिनट आंखें मीचकर ईश्वर का चिंतन कर।'

बाहर जब शारीरिक तौर पर मेरी बचकानी उम्र उनके पितृ-अधिकार से टक्कर न ले सकती तब मैं आलथी पालथी मारकर बैठ जाती आंखें मीच लेती, पर अपनी हार को अपने मन का रोष बना लेती—'अब आंखें मीचकर अगर मैं ईश्वर का चिंतन न करूं तो पिताजी मेरा क्या कर लेंगे ? जिस ईश्वर ने मेरी वह बात नहीं सुनी, अब मैं उससे कोई बात नहीं करूंगी। उसके रूप का भी चिंतन नही करूंगी। अब मैं आंखें मीचकर अपने राजन का चिंतन करूंगी। वह मेरे साथ सपने में खेलता है मेरे गीत सुनता है वह कागज लेकर मेरी तसवीर बनाता है—बस, उसी का ध्यान करूंगी उसी का।

ये वे दिन थे जिनके बाद मैंने कई दिन नही कई महीने नही, कई बरस दो सपनों में गुजार दिए। रोज रात को मेरे पास आना इन सपनों का नियम बन गया। गर्मी जाए, जाडा जाए इन्होंने कभी नागा नहीं किया।

एक सपना था कि एक बहुत बडा किला है और लोग मुझे उसमें बंद कर देते हैं। बाहर पहरा होता है। भीतर कोई दरवाजा नही मिलता। मैं किले की दीवारों को उंगलियों से टटोलती रहती हूं पर पत्थर की दीवारों का कोई हिस्सा भी नही पिघलता।

सारा किला टटोल टटोलकर जब कोई दरवाजा नही मिलता तो मैं सारा जोर लगाकर उड़ने की कोशिश करने लगती हूं।

मेरी बांहों का इतना जोर लगता है इतना जोर लगता है कि मेरा सांस चढ़ जाता है।

फिर मैं देखती हूं मेरे पैर धरती से ऊपर उठने लगते हैं। मैं ऊपर होती जाती हूं और ऊपर, और फिर किले की दीवार से भी ऊपर हो जाती हूं।

सामने आसमान आ जाता है। ऊपर से मैं नीचे निगाह डालती हूं। किले का पहरा देने वाले घबराए हुए हैं—गुस्से में बांहें हिलाते हुए पर मुझ तक किसी का हाथ नही पहुंच सकता।

और दूसरा सपना था कि लोगो की एक भीड मेरे पीछे है। मैं पूरा स पूरी ताकत लगाकर दौडती हू। लोग मेरे पीछे दौडते है। फासला कम होता जाता है और मेरी घबराहट बढती जाती है। मैं और जोर से दौडती हू, और जोर स, और सामने दरिया आ जाता है।

मेरे पीछे आने वाली लोगो की भीड म खुशी बिखर जाती है— अब आगे कहा जाएगी ? आगे कोई रास्ता नही है आगे दरिया बहता है '

और मैं दरिया पर चलने लगती हू । पानी बहता रहता है पर जसे उसमे धरती जैसा सहारा आ जाता है। धरती तो पैरो को सख्त लगती है। यह पानी नरम लगता है और मैं चलती जाती हू।

सारी भीड किनारे पर रुक जाती है। कोई पानी म पैर नही डाल सकता। अगर कोई डालता है तो डूब जाता है। और किनारे पर खडे हुए लोग घूरकर देखते हैं, किचकिचिया भरते हैं पर किसी का हाथ मुझ तक नही पहुच पाता।

मेरा सोलहवा साल

सोलहवा साल आया—एक अजनबी की तरह। पास आकर भी एक दूरी पर खडा रहा। मैं कभी चुपचाप उसकी ओर देख लेती, वह कभी मुसकराकर मेरी ओर देख लेता।

घर म पिताजी के सिवाय कोई नही था—वह भी लेखक जो सारी रात जागते थे लिखते थे और सारे दिन सोते थे। मा जीवित होती तो शायद सोलहवा साल और तरह से आता—परिचितो की तरह सहेलिया दोस्तो की तरह सगे सबधियो की तरह पर मा की गरहाजिरी के कारण जिन्दगी म स बहुत कुछ गरहाजिर हो गया था। आस पास के अच्छे बुरे प्रभावो स बचाने के लिए पिता को इसम ही सुरक्षा समझ म आयी थी कि मेरा कोई परिचित न हो न स्कूल की कोई लडकी न पडोस का कोई लडका। सोलहवा बरस भी इसी गिनती म शामिल था और मेरा खयाल है इसीलिए वह सीधी तरह घर का दरवाजा खटखटाकर नही आया था चोरो की तरह आया था।

वह कभी किसी रात मेरे सिरहाने की खुली खिडकी म स होकर चुपचाप मेरे सपनो म आ जाता या कभी दिन के समय जब मेरे पिता को सोए हुए देखता तो वह घर की दीवार फादकर आ जाता और मेरे कमरे के कोने म लगे हुए छोटे से शीशे म आकर बैठ जाता।

ऐसी भी थी जिनमे किसी मेनका या उर्वशी के आगमन से ऋषियों की समाधि
भग हो जाती थी। यह दूसरे प्रकार की पुस्तकें ऐसी थी जिन्हें पढते समय उनकी
किसी पक्ति म से निकलकर अचानक मेरा सोलहवा वरस मेरे सामने आ खडा
होता था। लगता था यह सोलहवा वरस भी जसे किसी अप्सरा का रूप था जो
मेरे सीधे-सादे वचपन की समाधि भग करने के लिए कभी अचानक मेरे सामने
आ खडा होता था

कहते हैं ऋषियो की समाधि भग करने के लिए जो अप्सराए आती थी उसमे
राजा इन्द्र की साजिश होती थी। मेरा सोलहवा साल भी अवश्य ही ईश्वर की
साजिश रहा होगा क्योकि इसने मेरे वचपन की समाधि तोड दी थी। मैं
कविताए लिखने लगी थी। और हर कविता मुझे वर्जित इच्छा की तरह लगती
थी। किसी ऋषि की समाधि टूट जाए तो भटकने का शाप उसके पीछे पड जाता
है—'सोचो' का शाप मेरे पीछे पड गया

पर सोलहवें वर्ष से मेरा स्वाभाविक सवध नही था—चोरी का रिश्ता
था। इसलिए वह भी मेरी तरह मेरे पिता के आगे सहम जाता था, और मेरे
पास से परे हटकर किसी दरवाजे के पीछे जाकर खडा हो जाता था और उसे
छिपाए रखने के लिए मैं एक क्षण जो मन मर्जी की कविता लिखती थी दूसरे
क्षण फाड देती थी और पिता के सामने फिर सीधी सादी और आज्ञाकारी बच्ची
बन जाती थी।

मेरे पिता को मेरे कविता लिखने पर आपत्ति नही थी—वल्कि काफिये रदीफ
की वात मुझे मेरे पिता ने सिखायी थी केवल उनका आग्रह था कि मैं धार्मिक
कविताए लिखू। और मैं आज्ञाकारी बच्ची की तरह वही दकियानूसी कविताए
लिख देती थी (उम्र के सोलहवें साल म हर विश्वास पारम्परिक होता है, और
इसीलिए दकियानूसी भी)।

इस तरह सोलहवा वर्ष आया और चला गया। प्रत्यक्ष रूप म कोई घटना
नही घटी। वास्तव म यह वर्ष आयु की सडक पर लगा हुआ खतरे का चिह्न
होता है (कि वीते वर्षों की सपाट सडक खत्म हो गयी है आगे ऊची नीची
और भयानक मोडो वाली सडक शुरू होनी है और अब माता पिता के कहने
से लेकर स्कूल की पुस्तकें कठ करने उपदेश को सुनने मानने, और सामाजिक
व्यवस्था को आख-मूद कर स्वीकार करने के भोले भाले विश्वास के सामने हर
समय एक प्रश्न-वाक्य आ खडा होगा)। इस वर्ष जाना पहचाना सब कुछ
शरीर के वस्त्रो की तरह तग हो जाता है होठ जिन्दगी की प्यास से खुश्क हो
जाते हैं आकाश के तारे जिन्हें सप्त ऋषियो के आकार म देखकर दूर से प्रणाम

चरना होता था पास जाकर छू लेने को जी करता है इद गिद और दूर पास की हवा मे इतनी मनाहिया और इतने इनकार होते हैं और इतना विरोध, कि सासो म आग सुलग उठती है

जिस हद तक यह सब औरा के साथ होता है मेरे साथ उसस तिगुना हुआ। (एक, आस पास की मध्य श्रेणी का फीका और रस्मी रहन-सहन, दूसर, मा के न होने के कारण हर समय मनाहियो का सिलसिला, और तीसरे पिता के धार्मिक अगुआ होने की हैसियत म मुझ पर भी अत्यन्त सयमी होकर रहने की पाबन्दी) इसलिए सोलहवें वष से मेरा परिचय उस असफल प्रेम के समान था जिसकी कसक सदा के लिए कही पडी रह जाती है और शायद इसीलिए वह सोलहवा वष भी अब मेरी जिन्दगी के हर वष म कही न कही शामिल है

इसके रोष का पूरा रूप मैंने उसके बाद कई बार देखा। १९४७ मे देश के विभाजन के समय भी देखा। सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक मूल्य काच के बरतना की भाति टूट गए थे और उनकी किरचें लोगा के परो मे बिछी हुई थी। य किरचें मरे परा म भी चुभी थी और मेरे माथे म भी। जिन्दगी का मुह देखने की भटकन मे मैंने उसी तपिश के साथ कविताए लिखी जिस तपिश के साथ कोई सोलहवें वष म अपने प्रिय का मुख देखने के लिए लिखता है। और इसी तरह फिर पडोसी देशा के आक्रमण के समय, वियतनाम की लम्बी यातना के समय चेकोस्लावाकिया की विवशता के समय

मेरा खयाल है जब तक आखा म कोई हसीन तसव्वुर कायम रहता है और उस तसव्वुर की राह म जो कुछ भी गलत है उसके लिए रोष कायम रहता है, तब तक मनुष्य का सोलहवा वष भी कायम रहता है (खुदा की जाति की तरह हर सूरत म)।

हसीन तसव्वुर एक महबूब के मुह का हो या धरती के मुह का इससे फक नही पडता। यह मन के सोलहवें वष के साथ मन के तसव्वुर का रिश्ता है। और मेरा यह रिश्ता अभी तक कायम है

खुदा की जिस साजिश न यह सोलहवा वष किसी अप्सरा की तरह भेजकर मेरे बचपन की समाधि भग की थी, उस साजिश की मैं ऋणी हू क्योकि उस साजिश का सबध केवल एक वष स नही था, मेरी सारी उम्र से है।

मेरा हर चिन्तन अब भी कुछ कुछ समय बाद मेरे सीधे सादे दिनो की समाधि भग करता रहता है (सब्र सन्तोष से जिन्दगी के गलत मूल्या के साथ की हुई सुलह उस समाधि की तरह होती है जिसम आयु अकारथ चली जाती है) और मैं खुश हू मैंने समाधि के चन का वरदान नही पाया भटकन की बेचनी का शाप पाया है और मेरा सोलहवा वष आज भी मेरे हर वष म शामिल है सिफ अब इसका मुह अजनबी नही रहा सबसे अधिक पहचान वाला हो गया है। और

अब इसे चोरी से दीवारें फादकर आने की जरूरत नहीं रही, यह हर विरोध को खुले बन्दा पछाडकर आता है—केवल बाहरी विरोध को नहीं, मेरी आयु के पचासवें वर्ष के विरोध को भी पछाडकर—और उसके सब लक्षण अब भी उसी प्रकार हैं—जब भी इद गिर्द का सब-कुछ तन के कपडो की भाति रूह को तग लगता है, होठ जिन्दगी की प्यास से खुश्क हो जाते हैं आकाश के तारों को हाथ से छून को जी करता है, और कोई अन्याय, चाहे दुनिया म किसी से, और कहीं भी हो उसके विरुद्ध मेरी सासो म आग सुलग उठती है

एक साया

एक सावला-सा साया था जो बचपन से ही मेरे साथ चलने लगा। फिर धीरे धीरे जाना कि इसमे बहुत कुछ मिला हुआ है—अपने महबूब का चेहरा भी, और अपना भी जिसकी मुझे अभी केवल तमन्ना थी मुझसे कहीं अधिक सयाना, गभीर और तगडा—और इसके अलावा अपने देश और हर देश के मनुष्य का स्वतन्त्र चेहरा भी

जो लिखती रही—इस हडिडया के ढाचे को रक्त और मास देने की चाह म लिखती रही, इसी के सावले रग मे रोशनी का रग भरने की तमन्ना म

यह एक प्रकार से खुदा को धरती पर उतार लेन की तमन्ना थी। शायद इसीलिए यह साया एक चेहरे तक सीमित नहीं रहा, जहा भी कहीं सुन्दरता का कण है, वहा तक व्यापक हो गया।

यह वही 'मैं' है जिसके लिए लिखा था—बहुत समकालीन है, केवल यह 'मैं' मेरा समकालीन नहीं

यह एक दर्द था पछी के गीत की तरह। एक पल हवा म, दूसरे पल कहीं भी नहीं। किसी कान ने सुन लिया, ठीक है। नहीं सुना, तब भी ठीक है। किसी के कान पर न कोई हक था, न दावा।

बहुत बच्ची थी जब हैरान हुई कि मेरे चारो ओर कितनी ही आवाजें हैं जो गालिया बन गयी हैं। कितन ही नामा के झडे थ, और थडे थे जिनम वे झडे गडे हुए थे उन्होंने समझा कि मुझे भी वहा अपने नाम का कोई थडा गाडना है। कहना चाहा—दोस्तो तुम्हारे थडे और तुम्हारे झडे तुम्हें मुबारक, मुझे कुछ नहीं चाहिए गलतफहमी म न पडो।

देखा—कुछ कहना सुनना सभव नहीं है। समझा—कि वक्ती बात है, कभी तो सभव होगा, पर अपनी भाषा के साहित्यकारो के हाथो यह कभी सभव नहीं

हुआ—न आज से तीस बरस पहले, न अब।

यह मेरा पहला दु:ख़ान्त था, पर नहीं जानती थी कि उम्र जितना लम्बा होगा।

कुछ बुज़ुर्ग चेहरे थे—गुरबख्शसिंहजी, धनीराम चात्रिक, प्रिंसिपल तेजासिंह—जो प्यार से शायद रहम से मुसकराए थे। पर इनमें से दो चेहरे बहुत जल्दी बिछुड़ गए—और गुरबख्शसिंहजी जो कुछ साहित्य में घटता था, उससे बहुत जल्दी विरक्त हो गए शायद निर्लिप्त।

मन की तहों में सबसे पहला दर्द जिसके चेहरे की रोशनी में देखा वह उस मज़हब का था जिसके लोगों के लिए घर के बरतन भी अलग कर दिए जाते थे।

यही वह चेहरा था जो मेरे अन्दर के इंसान को इतना विशाल कर गया कि हिन्दुस्तान के बटवारे के समय बटवारे के हाथों तबाह होकर भी दोनों मज़हबों के ज़ुल्म बिना किसी रियायत या द्वेत के लिख सकी। यह चेहरा न देखा होता तो 'पिंजर' नॉवेल की तकदीर न जाने क्या होती।

बीस इक्कीस बरस की थी जब कल्पना किया हुआ चेहरा इस धरती पर देखा था (इस मिलन को बहुत वर्ष बाद मैंने विस्तारपूर्वक 'आखिरी ख़त' में लिखा था)। यह शी की भांति रोज़ आग में नहाने वाली हालत थी—यहां तक कि १९५७ में जब अकादमी का पुरस्कार मिला फोन पर ख़बर सुनते हुए सिर से पैर तक मैं ताप में तप गयी—ख़ुदाया! ये सुनहड़े[1] मैंने किसी इनाम के लिए तो नहीं लिखे थे, जिसके लिए लिखे थे उसने पढ़े नहीं, अब सारी दुनिया भी पढ़ ले तो मुझे क्या

उस दिन शाम पड़े एक प्रेस रिपोर्टर आया फोटोग्राफर साथ था। वह जब तसवीर लेने लगा उसने कागज़-कलम से वह समय पकड़ना चाहा जो किसी कविता के लिखने का होता है। मैंने सामने मेज़ पर कागज़ रखा और हाथ में कलम लेकर कागज़ पर कोई कविता लिखने की जगह—एक अचेत-सी दशा में उसका नाम लिखने लगी जिसके लिए वे सुनेहड़े लिखे थे—साहिर, साहिर, साहिर साहिर सारा कागज़ भर गया।

प्रेस के लोग चले गए तो अकेले बैठे हुए मुझे चेतना सी आयी—सवेरे समाचारपत्र में चित्र होगा तो मेज़ के कागज़ पर यह साहिर-साहिर की आवृत्ति होगी ओ ख़ुदाया!

मजनूं के लैला लैला पुकारने वाली हालत मैंने उस दिन अपने तन पर झेली।

---

१ सुनहड़े (सदेस) काव्य पुस्तक का शीर्षक।

यह बात और है कि कमरे का फोकस मेरे हाथ पर था कागज पर नहीं, इसलिए दूसरे दिन के समाचारपत्र में कागज पर कुछ भी नहीं पढा जा सकता था। (कुछ भी नहीं पढा जा सकता था इस बात की तसल्ली होने के बाद एक पीडा भी इसमें सम्मिलित हो गयी—'कागज खाली दिखाई देता है, पर ईश्वर जानता है वह खाली नहीं था')।

साहिर को मैंने थोडा-सा 'अशू' उपन्यास में चित्रित किया। फिर 'एक थी अनीता' में और फिर 'दिल्ली की गलियाँ' में सागर के रूप में।

कविताएं बडे लिखी थीं, 'सुनहडे' सबसे लम्बी कविता, 'खत' शीर्षक की सब कविताएं और एक अन्तिम कविता 'आग की बात' लिखकर लगा कि अब चौदह बरस का बनवास भुगतकर स्वतन्त्र हो गयी हूं।

पर बीत हुए बरस—शरीर पर पहने हुए कपडों की तरह नहीं होते, ये शरीर के तिल बन जाते हैं। मुह से चाहे कुछ नहीं कहते, शरीर पर चुपचाप पडे रहते हैं। बहुत बर्षों बाद—बलगारिया के दक्षिण में वार्ना के एक होटल में ठहरी हुई थी जहां एक ओर समुद्र था दूसरी ओर जंगल और तीसरी ओर पहाड। वहां एक रात ऐसा लगा जैसे समुद्र की ओर से एक नाव आयी, और उसमें से कोई उतरकर खिडकी की ओर से मेरे होटल के कमरे में आ गया।

चेतनता और अचेतनता परस्पर मिल सी गयी। उस रात कविता लिखी थी—'तेरी यादें बहुत देर से जलावतन थीं '

मेरे अकेलेपन का अभिशाप इमरोज़ ने तोडा है। पर उससे मिलने से पहले एक और प्यारी घटना मेरे साथ घटी थी—एक बहुत ही पाक दिल इंसान की दोस्ती मुझे मिली थी।

सज्जाद हैदर से परिचय तब हुआ था जब अभी देश का विभाजन नहीं हुआ था। अपने समकालीनों में किसी एक से भी ऐसी मुलाकात नहीं हुई जो उलझनों और गलतफहमियों से रहित होकर हुई हो। दोनों हाथों से तल्खियां बाटने वाली सब मुलाकातों में केवल सज्जाद की ऐसी मुलाकात थी जो पहली थी और जिसके साथ दोस्ती लफ्ज़ आंखों के आगे झिलमिला जाता था।

लाहौर में थी तो अक्सर मुलाकात होती थी। किसी मुलाकात के होंठों पर कोई शाप हरफ कभी नहीं आया। वह मिलने आता था तो एक अदब उसके साथ ही सीढियों पर चढता था। फिर बहुत जल्दी ही फ़िसाद शुरू हो गए। सारे-शहर में कर्फ्यू लगा रहता पर कर्फ्यू खुलता तो वह थोडी पल के लिए जरूर आता। उन्हीं दिनों २३ अप्रैल आयी—यह मेरी बच्ची का जन्मदिन था। शहर के अग्नि और हत्याकाण्ड के वातावरण में जन्मदिन मनाने का होश नहीं था। शाम को दरवाज़े पर खटका हुआ—सज्जाद मेरी बच्ची के पहले जन्मदिन का

नाम को लेकर आज मुझसे मजाक किया है फिर कभी न करना। तुम्हें नहीं मालूम कि मेरी मुहब्बत में उसके लिए परस्तिश भी शामिल है।

उसकी हसीन रूह की एक और घटना याद आ रही है। हम कनाट प्लेस से घर आए थे स्कूटर में। स्कूटर वाले ने कुछ ज्यादा ही पैसे मांगे मैं उससे पैसों के बारे में कुछ कह रही थी कि सज्जाद ने जल्दी से जितने पैसे उसने मांगे थे उसने उसे थमा दिए और उसके जाने के बाद मुझसे कहने लगा, ये जितने भी लोग पाकिस्तान से उजड़कर आए हैं मुझे लगता है मैं सबका कुछ न कुछ देनदार हूं'

काश, इस मनुष्य की रूह से सारी दुनिया की राजनीति, अगर बहुत नहीं तो थोडा-सा ही सौन्दर्य मांग लेती

फिर राजनीतियों के कर्म कि दोनों देशों में चिट्ठी पत्री बन्द हो गयी। जिन वर्षों में मैं बडी कठिन स्थिति से गुजर रही थी, बडी अकेली थी, सज्जाद का खत भी मेरे साथ नहीं था (उन दिनों कई महीने तक एक साइकेट्रिस्ट के इलाज में रही थी उसके कहने पर उसके लिए जो अपनी परेशानियां और सपने लिखे थे, वही फिर काला गुलाब किताब में छपे थे)।

फिर इमरोज मेरी जिन्दगी में आया। दोनों देशों में कुछ समय के लिए चिट्ठी-पत्री भी खुली। फिर मैंने और इमरोज ने सज्जाद को खत लिखा। जवाब में उसका जो खत इमरोज के नाम आया, दुनिया के सब इतिहास उसे सलाम कर सकते हैं। लिखा था— मेरे दोस्त! मैंने तुम्हें देखा नहीं है पर ऐमी की आंखों से देख लिया है। और आज दुनिया के इतिहास में जो नहीं हुआ, वह हुआ है। मैं तुम्हारा रकीब तुम्हें सलाम भेजता हूं।

साहिर से भी मेरी और इमरोज की मुलाकात हुई थी। पहली मुलाकात में वह उदास था—हम तीनों ने एक ही मेज पर जो कुछ पिया, उसके खाली गिलास हमारे आने के बाद भी कुछ देर तक उसकी मेज पर पडे रहे। उस रात को उसने नज्म लिखी थी— मेरे साथी खाली जाम तुम आबाद घरों के वासी हम हैं आवारा बदनाम' और यह नज्म उसने मुझे रात के कोई ग्यारह बजे फोन पर सुनाई और बताया कि वह बारी-बारी से तीन गिलासों में ह्विस्की डालकर पी रहा है। पर बम्बई में दूसरी मुलाकात के समय इमरोज को बुखार चढा हुआ था उसने उसी वक्त अपना डाक्टर भेज दिया था उसके इलाज के लिए।

सज्जाद के बारे में जो कुछ मन में था निस्संकोच कलम की नोक पर आ गया है—अपने पाक रूप में, पर राजनीतिक हालात का तकाजा है कि उसका जिक्र भी मेरी जबान पर नहीं आना चाहिए। पिछले दिनों जब रेडियो और टलीविजन के लिए कुछ संस्मरण प्रस्तुत करते हुए मैंने फैज़ नदीम और सज्जाद का कुछ बार नाम लिया तो पाकिस्तान के कुछ अखबारों ने उसके अर्थ तोड-

मरोड़कर मेरे साथ अपने लोगों को भी कसूरवार समझा था कि मैं और पाकिस्तान के कुछ इंटलैक्चुअल्ज़ हिंदुस्तान के बटवारे को मन से कबूल नहीं करते और पाकिस्तान के अस्तित्व से दुःखी हैं—और हमारी रूह भटक रही हैं आदि-आदि इसका असर यह हुआ कि सज्जाद ने मुझे लिखा कि मैं रेडियो टेलीविज़न पर किसी तरह भी उसका नाम न लिया करूं। आज अपनी गहरी उदासी में यही कह सकती हूं—दोस्त ! तुम्हारा नाम फिर होठों पर आया है क्योंकि इसके बिना मेरी यादें अधूरी हैं—पर खुदा करे तुम्हारा किसी तरह का कोई अनिष्ट न हो और तुम्हारी पाक दोस्ती को राजनीति की गर्म हवा न छुए।

उस समय के अखबारों के जवाब में दिल्ली रेडियो के एक्सटर्नल सर्विसेज़ डिवीज़न ने एक बातचीत करवाई जिसमें मैं थी, जामिया मिलिया के प्रिंसिपल साहब और एक लेक्चरर थे—हमें पाकिस्तान के अस्तित्व से कोई शिकायत नहीं है—शिकायत सिर्फ यह है कि हमारे दोनों मुल्कों में दोस्ताना रवैया क्यों नहीं है। यह कोई आधा घंटे की बातचीत थी जिसमें हम तीनों ने भाग लेकर इस नुक्ते को स्पष्ट किया था। मालूम नहीं इसका असर उन अखबारों पर कुछ हुआ या नहीं, पर हम सबने सुखरू महसूस किया, पर यह पता नहीं कि इसके बाद सज्जाद ने कुछ सुखरू महसूस किया या नहीं। आज फिर यह दोहरा रही हूं केवल इसलिए कि सज्जाद के मुल्क की राजनीति मुझे खैरख्वाह ही समझे—और कुछ नहीं।

खामोशी का एक दायरा

लौटकर कई मील पीछे देखूं तो देश के विभाजन से पहले के वे दिन सामने आते हैं जब अचानक लाहौर की हवा रोमांचक अफवाहों से तल्ख हो गयी थी। ज़िन्दगी में एक ही घटना घटी थी—ब्याह हुआ था चार साल की उम्र में जो सगाई हुई थी वह सोलह साल की उम्र होते-होते परवान चढ़ी। बहुत एकसार चल रही ज़िन्दगी की तरह। पर साहित्यिक क्षेत्र में बहुत ही रोमांचक कहानियां फैल गयीं। मालूम हुआ—पंजाबी कविता में जिस कवि का नाम उस समय मान के साथ लिया जाता था उसने मुझ पर कई कविताएं लिखी हैं।

यह उस समय के प्रसिद्ध कवि मोहनसिंह का नाम था। पर जिन समागमों में भी मैंने मोहनसिंहजी को देखा उनसे साधारण-सी मुलाकात हुई इससे ज्यादा कुछ नहीं। शायद उनका स्वभाव ही संजीदा और गंभीर था इसलिए। मुझे उनसे कोई गिला नहीं था, पर इर्द गिर्द फैलने वाली कहानियों से मैं खुश

नहीं थी। मेरे मन में उनके लिए, अपने से बड़े कवि होने के नाते, एक आदर भाव था पर इसके सिवाय कुछ नहीं था। मेरा मन अपने ही भीतर से उठती हुई परछाइं से घिरा हुआ था, इसलिए इद गिर्द की कहानियां केवल यह डर जगाती थीं कि मैं एक गलतफहमी का केन्द्र बन रही हूं पर मोहनसिंहजी का शिष्टाचार ऐसा था कि उनको लेकर कोई शिकवा नहीं कर सकती थी।

फिर एक दिन सध्या समय मोहनसिंहजी मिलने के लिए आए। उनके साथ शायद डाक्टर दीवानसिंह थे, या कोई और अब मुझे याद नहीं है और मालूम हुआ कि अगले दिन उन्होंने एक कविता लिखी 'जायदाद', जिसका भाव था—वह दरवाजे में खामोश खडी थी, एक जायदाद की तरह, एक मालिक की मिल्कियत की तरह

मेरे लिए—यह मेरे मन के बहुत कठिन दिन थे। कविता की स्पष्टता मुझे बेचैन कर रही थी—कि एक अच्छे भले आदमी को मेरी खामोशी गलतफहमी में डाल रही है। पर यह पता नहीं लग रहा था कि खामोशी को मैं किस तरह तोडूं। मेरे सामने मोहनसिंहजी ने अपनी खामोशी कभी नहीं तोड़ी। इस खामोशी की एक अपनी आबरू थी जो कायम थी।

और फिर एक दिन मोहनसिंह आए। उनके साथ फारसी के विद्वान् कपूरसिंह थे। मेरा सकोच उसी प्रकार था, जिसमें आदर भी सम्मिलित था, पर शायद कुछ रुखापन भी, कि अचानक कपूरसिंहजी ने कहा, "मोहनसिंह! डोंट मिसअडरस्टैंड हर शी डज़ नॉट लव यू" तो चिरकाल की जमी हुई खामोशी कुछ पिघल गयी। उस दिन मैं साहस करके कह सकी "मोहनसिंहजी, मैं आपकी दोस्त हूं आपका आदर करती हूं। आप और क्या चाहते हैं?" बड़े सकोच भरे शब्दों में मैंने केवल इतना कहा और मेरे विचार में यह काफी था।

मोहनसिंहजी ने कुछ नहीं कहा, केवल बाद में एक छोटी सी कविता लिखी, जिसमें वही शब्द दोहराए मैं आपकी दोस्त हूं, मैं आपकी मित्र हूं आप और क्या चाहते हैं?" और आगे की पंक्तियों में उदासी से लिखा—"मैं और क्या चाहूंगा"

कुछ कहानियां-सी फिर भी साहित्य में चलती रहीं—कई मौखिक कई कुछ लोगों की रचनाओं में सकेतों में, पर मोहनसिंहजी की ओर से ऐसी कोई रचना नहीं आयी जो मुझे दुखा जाती। इसलिए मेरी ओर से भी आज तक उनके आदर में कभी कोई अन्तर नहीं आया।

एक साधारण-सी घटना और भी घटी थी। लाहौर रेडियो के एक अफसर थे जिन्हें शायद साहित्य से कुछ लगाव था। एक बार मेरे एक ब्राडकास्ट के बाद अचानक बोले, 'अगर मैंने आज से कुछ बरस पहले आपको देखा होता तो या

तो मैं मुसलमान से सिख हो गया होता या आप सिख से मुसलमान हो गयी होती।

ये शब्द अचानक हवा में उभरे और अचानक हवा में लीन हो गए। मेरा खयाल है—यह एक क्षण का जज्बा था जिसका न कोई पहला क्षण इसमें जुड़ता था न कोई आगे का क्षण। फिर उस दिन के बाद उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। पर मैं आज तक नहीं जानती कि उस समय के वातावरण में उनके किसी भी एहसास की बात कैसे बिखर गयी शायद किसी के आगे स्वयं उन्हीं की जबानी और न जाने किन शब्दों में कि बाद में इसका बहुत तोड़ा मरोड़ा हुआ जिक्र भी पढ़ा। कई बार लगता है—कई पंजाबी लेखकों के पास लिखने के लिए कोई गंभीर विषय नहीं होता वे स्वयं ही कुछ अफवाहें फैलाते हैं स्वयं ही उनको अपनी मर्जी से जिधर चाहे मोड़ते हैं और फिर उन्हें लिख लिखकर उनमें लज्जत लेते हैं

हां वर्षों बाद जब मैंने दिल्ली रेडियो में नौकरी की तो वहां एक पंडित सत्यदेव शर्मा हुआ करते थे जो लाहौर रेडियो पर भी स्टाफ आर्टिस्ट थे और अब दिल्ली रेडियो पर भी स्टाफ आर्टिस्ट थे। उन्होंने हिन्दी में एक कहानी लिखी—ट्वेन्टी सिक्स मेन एण्ड ए गर्ल। कहानी का शीर्षक उन्होंने गोर्की की कहानी से ही लिया पर लिखा उस पुरानी घटना को और कहानी लिखकर मुझे सुनाई। बड़े साफ दिल के आदमी थे। उन्होंने बताया लाहौर रेडियो पर तुम्हें नहीं मालूम कि कितने लोग तुममें दिलचस्पी लेते थे खासकर वह आदमी भी। और हम सब स्टाफ के लोग महीनों तक एक फिक्र के साथ देखते रहे कि आगे क्या होगा पर कुछ हुआ नहीं।

शर्माजी शायद यह कहानी कभी भी न लिखते पर मुझे देखकर उन्हें बरसों पुराना वह इंतजार याद आ गया जिसमें वह कुछ होने की संभावना से चिंतित रहे थे। कहानी में स्टाफ के छोटे छोटे लोगों के कानों का जिक्र था जो कुछ उड़ती हुई सुनने के लिए दीवारों से लगे रहते थे कुछ सुनाई नहीं देता था तो हैरान बैठ जाते थे कि शायद कुछ हो ही चुका है पर कानों तक नहीं पहुंच रहा है

शर्माजी साधारण से लेखक थे पर मेरा खयाल है यह कहानी उनकी सबसे अच्छी कहानी थी। उन्होंने एक तनाव के वातावरण को पकड़ने की कोशिश की थी पर अपनी ओर से पंजाबी लेखकों की तरह जबरदस्ती कोई नतीजा नहीं निकाला था। कहानी में एक ईमानदाराना सादगी थी।

नफरत का एक दायरा

बात यह भी छोटी सी है पर एक बहुत बड़े नफरत के दायरे में घिरी हुई। यह भी मेरी साहित्यिक ज़िन्दगी के आरंभिक दिनों की बात है, लाहौर की। पंजाबी के एक कवि थे जिनसे कभी भेंट नहीं हुई थी। पता लगता रहता था कि वह मेरे विरुद्ध बहुत बोलते हैं। मैंने उन्हें कभी देखा नहीं था इसलिए चकित हुआ करती थी कि उन्हें मेरी जात से कब की और किस बात की दुश्मनी है।

फिर देश के विभाजन से कुछ समय पहले की बात है कि एक बार मुझे कुछ बुखार हो गया और एक साप्ताहिक के संपादक हाल पूछने के लिए आए। उनके साथ एक कोई और व्यक्ति भी था जिसे मैंने कभी पहले नहीं देखा था। उन्होंने नाम बताकर परिचय कराया तो मैं चौंक सी गयी। यह वही थे जिन्हें मेरे अस्तित्व से ही नफरत थी। हैरान थी कि आज यह मेरा हाल पूछने क्यों आए?

दो तीन दिन बाद उसी साप्ताहिक में उनकी एक कविता पढ़ी, जिसके नीचे वही तारीख पड़ी हुई थी जिस तारीख को वह मिलने के लिए आए थे। और यह कविता अजीबोगरीब प्रेम की कविता थी। ऐसा प्रतीत हुआ—जैसे नफरत के लिए कोई कारण नहीं था, उसी तरह इस जज़्ब के लिए भी कोई कारण नहीं था।

और फिर वह कुछेक बार घर आए। हैरान होकर पूछा कि यह अचानक मेहरबानी क्यों? पर कुछ भी पकड़ में नहीं आया। यह मानती हूं कि उनकी किसी बात में कोई शोखी नहीं थी लेकिन एक कठोरता सी जरूर थी कि सब लोग घटिया हैं, मैं किसी से न मिला करूं। यहां तक कि लाहौर रेडियो के लिए मैं जब साहित्य की समालोचना लिखा करती थी वह आग्रह किया करते थे कि अमुक का नाम मत लिखना, अमुक की प्रशंसा मत करना, अमुक की पुस्तक का उल्लेख मत करना।

इस साहित्यिक परिचय से जब सांस घुटने लगा तो मैं खीझ उठी। पर यह तल्खी अभी जबान पर आयी ही थी कि देश का बटवारा हो गया और मैं उनके परिचय से मुक्त हो गयी। फिर कुछ वर्ष बाद सुना कि उनके विचार में हिंदुस्तान का बंटवारा इसीलिए हुआ क्योंकि मैंने उनकी दोस्ती नहीं चाही। और उनके विचार में हज़ारों मासूम लोगों का कत्ल भी इसीलिए हुआ। खैर हिंदुस्तान के विभाजन का और मासूम लोगों के कत्ल का यह जो मुझ पर इल्ज़ाम था इस बात मनोविज्ञान का विशेषज्ञ भले ही समझ सके मैं नहीं समझ सकती। और देखने में आया कि अब वह फिर मेरे विरुद्ध बोलते थे और मेरे विरुद्ध कविताएं लिखते थे। यह नफरत मानो एक गोल दायरा थी जिसका आखिरी सिरा फिर पहले सिरे से जुड़ना ही था

पुराने इतिहासा के भीषण अत्याचारी काड हम लोगो ने भले ही पढे हुए थे, पर फिर तब भी हमारे देश के बटवार के समय जो कुछ हुआ किसी की कल्पना म भी उस जसा खूनी काड नही आ सकता।

दु खा की कहानिया कह कहकर लोग थक गए थे, पर ये कहानिया उम्र से पहले खत्म हाने वाली नही थी। मैंने लाशें देखी थी, लाशो जसे लोग दखे थे और जब लाहौर स आकर देहरादून मे पनाह ली तब नौकरी की और दिल्ली म रहने के लिए जगह की तलाश म दिल्ली आयी और जब वापसी का सफर कर रही थी तो चलती हुई गाडी मे नीद आखो के पास नही फटक रही थी

गाडी के बाहर घार अधेरा समय के इतिहास क समान था। हवा इस तरह साय साय कर रही थी जस इतिहास के पहलू मे बठकर रो रही हा। बाहर ऊचे ऊचे पड दु खा की तरह उगे हुए थे। कइ जगह पेड नही होते थे, केवल एक वीरानी होती थी, और इस वीरानी के टीले ऐसे प्रतीत हाते थे जसे टीले नही, कब्रें हो।

वारिस शाह की पक्तिया मेरे जेहन मे घूम रही थी— भला मोए त विछडे कौन मले 'और मुझे लगा वारिस शाह कितना बडा कवि था, वह हीर के दु ख का गा सका। आज पजाब की एक बेटी नही लाखा बेटिया रो रही हैं आज इनके दु ख को कौन गाएगा ? और मुझे वारिस शाह के सिवाय और कोई ऐसा नही लगा जिसे सबोधन करके मैं यह बात कहती।

उस रात चलती हुई गाडी म हिलते और कापत कलम से एक कविता लिखी—

अज्ज आक्खा वारिस शाह नू किते कबरा विच्चो बोल
ते अज्ज किताबे इश्क दा कोई अगला वरका खोल ।
इक्क रोई सी धी पजाब दी तू लिख लिख मारे बन
अज्ज लक्खा धीया रोदिया तनू वारिस शाह नू कहन
उठ ददमदा दिया ददिया । उठ तक्क अपणा पजाब

---

१ जो मर चुक हैं जो विछुड चुके हैं उनसे कौन मिलन कराए ।

अज्ज वेल्ले लाशा विच्छिया त लहू दी भरी चिनाव [1]

कुछ समय वाद यह कविता छपी, पाकिस्तान भी पहुची और कुछ देर वाद जव पाकिस्तान म फज अहमद फज की किताव छपी, उसकी प्रस्तावना म अहमद नदीम कासमी न लिखा कि यह कविता उन्होने जव पढी थी जव वह जेल म थे। जेल से वाहर आकर भी देखा कि लोग इस कविता को जेवा मे रखत हैं, निकालकर पढत हैं और रोते हैं

फिर १९७२ म लदन गयी, तो वहा वी० वी० सी० के एक कमरे म किसी ने पाकिस्तान की शायरा सहाब किजलवाश स मुलाकात करवायी। सहाब के पहले शब्द थे— अरे, यह अमता हैं जिन्होन वह कविता लिखी थी वारिस शाह इनसे तो गले मिलूँगे '

वहा ही एक शाम सुरिन्दर कोछड के घर पर महफिल थी जहा सहाव थी, और पाकिस्तान क और साहित्यिक थे—साकी फारूकी, फहमीदा रयाज़ और उदास नस्लें का लेखक अब्दुल्ला हुसन, और साथ ही पाकिस्तान के मशहूर गवय थे नज़ाकत अली सलामत अली। रात कविताओ से भरी हुई थी पर जव नज़ाकत अली से कुछ गाने के लिए कहा गया, तो उनके पास साज नही थे कहने लगे—'हमने आज तक विना साज के कभी नही गाया।' पर साथ ही बोले—'जिसन वारिस शाह कविता लिखी है आज उसके लिए बिना साज के भी गाएगे। और वह रात नज़ाकत अली की सुरीली आवाज म भीग गयी

अव १९७५ म जव पाकिस्तान के मुलतान शहर से एक साहित्यिक मशकूर सावरी उस के मौके पर दिल्ली आए तो उन्होंने वताया कि पिछले कई वरसो से वह मुलतान मे जश्ने वारिस शाह' मनात हैं जिसम लोक गीतो का लोक नत्य का और लोक कला का प्रदशन भी होता है, और मुशायरा भी और यह जश्न मेरी उस नज़्म वारिस शाह' स शुरू किया जाता है। वह सौ गुणा अस्सी फुट की स्टेज पर सेट लगात हैं जहा राझे का वन भी होता है हीर का मुकाम भी और यह नज़्म करीव पचीस मिनट गायी जाती है। स्टेट पर घुप्प अधेरा करके एक रोशनी स धुआ दिखाते हैं फिर वारिस शाह कब्र म से उठता है पाकिस्तान के मशहूर गवय एक एक कडी गाते हैं और उन्ही के मुताबिक स्टेज के दश्य वदलते

---

१ आज वारिस शाह से कहती हू अपनी कब्र मे से बोलो
और इश्क की किताब का कोई नया पृष्ठ खोलो
पजाव की एक वेटी रोयी थी तूने लम्बी दास्तान लिखी
आज लाखा वटिया रो रही हैं वारिस शाह तुम स कह रही हैं
ए ददमदा क दोस्त ! अपन पजाव को देखो
वन लाशा से अटे पडे हैं चिनाव लहू से भर गया है

जाते हैं और जब नज्म का आखिरी हिस्सा आता है तो ऐसी गूज पैदा करते है जस सारी कायनात म मुहब्बत और खलूस जाग पडा हो

पर यही कविता थी, जब लिखी थी तब अपने पजाब म कई पत्र पत्रिकाए मेरे लिए तोहमतो से भर गयी थी। सिक्खो को यह आपत्ति थी कि यह कविता वारिस शाह को सबोधन क्यो की गुरु नानक को सबोधन करके लिखनी चाहिए थी। और कम्युनिस्ट कहते थ कि मैंने लेनिन या स्टालिन का सबोधन करके क्या नही लिखी। यहा तक कि इस कविता के विरुद्ध कई कविताए लिखी गयी

सिफ औरत

बचपन की पनपती उम्र मे न जाने किस घडी, एक कल्पना भी शरीर का अग बन जाती है और पनपने लगती है

और अपना मन अपने आप ही जादू बुनने लगता है

दुनिया को सिजने वाली ईश्वर की शक्ति का मुट्ठीभर भाग, शायद हर इन्सान के हिस्से म आता है पता नही, पर मेरे हिस्से म जरूर आया था

और इसमें से—मैंने एक मद की परछाई गढी थी।

और उस परछाइ को अग के सग लेकर—आयु के वष पार करने लगी थी

हो सकता है—यह जिसे मैंने शक्ति कहा है—अपने सहज रूप म शक्ति नही है, यह कुछ उस प्रकार की ताकत है जो बडे खतरे के समय उस साधारण से व्यक्ति म भी आ जाती है जो समस्त नाशकारी शक्तियो को सामने देखकर अपना अतिम साधन भी अपने अगो म जगा लेता है

औरत थी चाहे बच्ची-सी और यह भय सा विरासत म पाया था कि दुनिया के भयानक जगल मे से मैं अकेली नही गुजर सकती। और शायद इसी भय मे से अपने साथ के लिए मद के मुह की कल्पना करना—मेरी कल्पना का अतिम साधन था

पर इस मद शब्द के मेरे अथ कही भी पढे सुने या पहचाने हुए अथ नही थ। अतर म कही जानती अवश्य थी पर अपने आपको भी बता सकने की सामथ्य मुझम नही थी। केवल एक विश्वास-सा था—कि देखूगी तो पहचान लूगी।

पर दूर मीलो तक कही भी कुछ दिखायी नहीं देता था।

और इस प्रकार वर्षों के कोई अडतीस मील गुजर गए।

मैंने जब उसे पहली बार देखा तो मुझसे भी पहले मेरे मन ने उसे पहचान लिया। उस समय मेरी आयु कोई अडतालीस वर्ष थी

यह कल्पना इतने वर्ष जीवित रही और इसके अब भी जीवित रहने—इस पर चकित हो सकती हू पर हू नहीं, क्योकि जान लिया है कि यह मेरे 'मैं' की परिभाषा थी—थी भी, और है भी।

मैं उन वर्षों म नहीं मिटी इसलिए वह भी नहीं मिटी

यह नही कि कल्पना से शिकवा नही किया, उस आयु की कई कविताए मेरी शिकवा ही हैं जसे

'लक्ख तेरे अम्बारा विच्चो, दस्स की लब्भा सानू
इक्को तद प्यार दी लब्भी, ओह वी तद इक्हरी '[1]

पर यह इकहरा तार वर्षों के बीतने पर भी क्षीण नही हुआ। उसी तरह मुझे अपने म लपेटे हुए मेरी उम्र के साथ चलता रहा

इन वर्षों की राह मे दो बडी घटनाए हुईं। एक—जिन्हें मेरे दुख-सुख से जन्म से ही सबध था मेरे माता पिता उनके हाथो हुई। और दूसरी मेरे अपने हाथो। यह एक—मेरी चार वर्ष की आयु मे मेरी सगाई के रूप म और मेरी सोलह सतरह वर्ष की आयु म मेरे विवाह के रूप म थी। और दूसरी—जो मेरे अपने हाथो हुई—यह मेरी बीस इक्कीस वर्ष की आयु म मेरी एक मुहब्बत की सूरत म थी।

पर कल्पना, जो मेरे अगो की भाति मेरे शरीर का भाग थी, वह मेरे शरीर म निर्लेप होकर खडी रही

उसे कई वर्ष समाज ने भी समझाया और कई वर्ष मैंने स्वय भी पर उसने पलकें नहीं झपकायी। वह कई वर्षों के पार—उस वीरानगी की ओर देखती रही, जहा कुछ भी नज़र नही आता था

और जब उसने पलकें झपकायी तब मेरी आयु को अडतीसवा वर्ष लगा हुआ था

और तब मैंने जाना कि क्या उसे, उससे कुछ अलग, या आधा या लगभग-सा कुछ भी नही चाहिए था।

---

१ तेरे लाखो अम्बारो म से बताओ हम क्या मिला
प्यार का एक ही तार मिला, वह भी इकहरा

यू तो—मेरे भीतर की औरत सदा मेरे भीतर के लेखक से दूसरे स्थान पर रही है कई बार यहा तक कि मैं अपने भीतर की औरत का अपने आपको ध्यान दिलाती रही हू। सिर्फ लेखक' का रूप सदा इतना उजागर होना है कि मेरी अपनी आखो को भी अपनी पहचान उसी म मिलती है।

पर ज़िन्दगी म तीन समय ऐसे आए हैं—मैंने अपने अन्दर की 'सिर्फ औरत को जी भरकर देखा है। उसका रूप इतना भरा पूरा था कि मेरे अन्दर के लेखक का अस्तित्व मेरे ध्यान से विस्मृत हो गया। वहा, उस समय कोई थोडी-सी भी खाली जगह नही थी, जो उसकी याद दिलाती। यह याद केवल अब कर सकती हू—वर्षों की दूरी पर खडे होकर।

पहला समय तब देखा था जब मेरी आयु पचीस वर्ष की थी। मेरे कोई बच्चा नही था और मुझे प्राय रात को एक बच्चे का स्वप्न आया करता था। एक छोटा सा चेहरा—बडे तराशे हुए नक्श सीधा टकुर टकुर मेरी ओर देखता हुआ। और कई बार यही स्वप्न देखने के कारण मुझे उस बच्चे के चेहरे की पक्की पहचान हो गयी थी। स्वप्न म वह मुझसे बात भी करता था, रोज़ एक ही बात और मुझे उसकी आवाज़ की पूरी पहचान हो गयी थी। स्वप्न मे मैं पौधा म पानी दे रही होती थी—और अचानक एक गमले मे फूल खिलने की जगह एक बच्चे का चेहरा खिल उठता था

मैं चौंककर पूछती थी—तू कहा था ? मैं तुझे ढूढती रही '

और वह चेहरा हस पडता था—मैं यही था छिपा हुआ था।

और मैं जल्दी से गमले म से बच्चे को उठा लेती थी।

जब मैं जाग जाती थी मैं वसी की वसी ही होती थी—सूनी, वीरान और अकेली। एक सिर्फ औरत—जो अगर मा नही बन सकती थी तो जीना नही चाहती थी।

दूसरी बार ऐसा ही समय मैंने तब देखा था जब एक दिन साहिर आया था तो उसे हल्का-सा बुखार चढा हुआ था। उसके गले म दर्द था—सास खिचा खिचा था। उस दिन उसके गले और छाती पर मैंने विक्स मली थी। कितनी ही देर मलती रही थी—और तब लगा था इसी तरह पैरो पर खडे खडे मैं पोरो से उगलियो से और हथेली से उसकी छाती को होले होले मलते हुए सारी उम्र गुज़ार सकती हू। मेरे अन्दर की 'सिर्फ औरत' को उस समय दुनिया के किसी कागज-कलम की आवश्यकता नही थी।

और तीसरी बार यह सिर्फ औरत मैंने तब देखी थी जब अपने स्टूडियो म बैठे हुए इमरोज़ ने अपना पतला सा ब्रुश अपने कागज़ के ऊपर से उठाकर उसे एक बार लाल रग मे डूबाया था और फिर उठाकर उस ब्रुश से मेरे माथे पर बिंदी लगा दी थी

मेरे भीतर की 'इस सिर्फ औरत' को 'सिर्फ लेखक' से कोई अदावत नहीं। उसने आप ही उसके पीछे उसकी ओट में खड़े होना स्वीकार कर लिया है—अपने बदन को उसकी आंखों से चुराते हुए और शायद अपनी आंखों से भी। और जब तक तीन बार—उसने अगली जगह पर आना चाहा था मेरे भीतर की 'सिर्फ लेखक' ने पीछे हटकर उसके लिए जगह खाली कर दी थी।

सिर्फ लेखक का रूप मेरे अंग के संग रहता है—विचारों में भी, सपनों में भी—और इस तरह उसकी और मेरी सूरत एक ही हो गयी है। पर सिर्फ औरत का रूप मैंने केवल तीन बार देखा है—वह एक वास्तविकता है—पर आंखों से उसे केवल तीन बार देखा है। इसलिए कई बार हैरान सी हो जाती हूं वह कैसा था? क्या मैंने सचमुच देखा था?

एक क़र्ज़

अठारह सौ सत्तावन के ग़दर के संबंध में मुझे कुछ मालूम नहीं है। पर यह शब्द 'गदर' दादी अम्मा से सुनी हुई किसी कहानी की तरह मेरे भीतर कहीं अटका हुआ था

यह शब्द किसी जीवित वस्तु की तरह भी था, और मरी हुई चीज की तरह भी

कभी कई तरह की आवाज़ें इसमें से आती हुई सुनी थीं—न जाने किनकी पर इंसानी आवाज़ें—एक दूसरे से टूटती हुई, एक दूसरे को खोजती हुई तलवारों की तरह खनकती हुई भी घावों की तरह रिसती हुई भी

कई रंग भी इस शब्द में से लहू की तरह बहते थे

पर फिर भी लगता था कि यह शब्द कब का मर चुका है केवल मेरे विचार कभी इस पर चींटियों की तरह चढ़ जाते हैं

इस गदर की केवल एक निशानी मैंने अपनी आंखों से देखी थी—जिस घराने में ब्याह हुआ यह निशानी उस घराने में पिछली पीढ़ी से चली आ रही थी। यह एक क़ालीन था जो दिल्ली के लूटे जाने के समय इस घराने के एक सरदार ने लूटा था। किसी जमाने में इसके न जाने कैसे रंग थे, पर जब मैंने देखा यह केवल रंगों का और रेशम का एक खंडहर-सा था। घर का दादा सदा इस इस कालीन पर सोता था। तब यह घराना लाहौर में रहता था। फिर उन्नीस सौ सैंतालीस में जब हिंदू मुसलमानों का तबादला हुआ, यह घराना दिल्ली आ गया। लाहौर के

भरे घर का छोडकर जब सब दिल्ली आने लगे तब घर के मुखिया दादा ने आने स इनकार कर दिया। उसका खयाल था यह अफरानफरी थोडे दिनो की है, सरकारें लोगो के घर नही छीन सकती इसलिए वह वही रहेगा और भर घर की रखवाली करेगा। पर जब हालत बहुत बिगड गयी तो मिलिटरी ने उस ट्रक म बिठाकर वहा स दिल्ली भेज दिया। बिस्तर के नाम पर केवल वही कालीन था जो अपने माथ वह ला सका और कुछ नही। भरा हुआ घर छाडने का दु ख, और रास्त का कष्ट, उससे बहुत दिन सहन न हो सका दिल्ली पहुचकर वह बहुत थाडे दिन जीवित रहा। जिस समय उसकी मत्यु हुई वही कालीन उसके नीचे बिछा हुआ था। उसक बाद वह कालीन किसी गरीब गुरवे को दे दिया गया। एक बात उस समय सबकी जबान पर थी— दिल्ली के गदर म यह कालीन हमने दिल्ली मे लूटा था आज दिल्ली से लूटी हुई चीज एक सदी के बाद दिल्ली को वापस लौटा दी

लूट भी शायद एक कर्ज होती है जो कभी न कभी लौटानी पडती है

कभी एक भयानक सा विचार आता कि मुझे भी किसी का कुछ लौटाना है--मालूम नही क्या मालूम नही किसे और मालूम नही कब

कभी कघी से बाल सवारत हुए कघी बालो म अटक जाती थी—विचार अटकावा की तरह आ जाते थे—मेरी मा की मा ने और उसकी मा की मा ने, हर औरत की मा न न जाने किस गदर म समाज से यह सोलह सिगार लूटे थे, और यह हार सिगार पीढी दर पीढी चले आ रहे हैं पर समाज का यह कर्ज उतारना है न जाने कब न जाने किस तरह मुझे भी और न जाने और कितनी औरतो का भी

और किसी का पता नही पर लगता था मैं बहुत कर्जदार हू

हिन्दुस्तान के विभाजन से पहले भी कई बार एसा लगा करता था। एक बार इसी कसक से एक कविता लिखी थी— हमसफर जब साथ तेरा दूर जा रहा है पर इस दूरी का सबध किसी बाहरी घटना से जुडा हुआ नही था, यह फासला सिर्फ भीतर का था

यही भीतर का फासला १९६० म धरती को फाडकर बाहर आ गया था। यह धरती के फटने का समय मेरे शरीर की हड्डिया को चटका देने वाला समय था। छाती का ईमान कहता था मैं अपने खाविन्द को उसका हक नहीं दे रही हू उसकी छाया मैंने गदर के माल की तरह चुरायी हुई है उसे लौटाना है लौटाना है

उसके लिए दोना हालतें दु खदायी थी—जो फासला विचारा की रग रग म था वह भी दु खदायी था और जो फासला सामाजिक रूप म पडना था वह भी। दोनो म स एक चुनाव सामने था—पर पहली हालत के मुकाबले म

दूसरी हालत म इमान जरूर बहुत ज्यादा जुडा हुआ था। इसलिए दूसरी हालत चुनी। दोनो का एक दूसरे से कोई शिकवा नही था, एक यह गभीर दोस्ताना फैसला था जिसमे किसी की भी जबान पर किसी के भी व्यक्तित्व का छोटा करने वाले शब्द के आने का प्रश्न नही था। जो कुछ एक दूसरे से पाया था उससे इनकार नही था। जो नहीं पाया था, उसके लिए कोई गिला नही था। सिर्फ जो 'अनपाया था यह दूरी उसी का तकाजा थी उसी की जरूरत। मेरा खयाल है—दोनो के लिए एक समान आवश्यक।

अपने-अपने भाग का दर्द बाटकर ले लिया। चेहरे मे इतने सुखरू थ सच्चे थे कि इस दर्द से उन्हे मुह छिपाने की आवश्यकता नही थी। यह दर्द भी आखो और होठो की तरह चेहरो का एक भाग था—या तिल की तरह था, या मस्से की तरह। इसे परवान करना था किया। अपने अगो की भाति। और इसे अपने अस्तित्व का एक हिस्सा मानकर।

कानून को अजनबी समझकर कुछ नही कहा—न उससे कुछ पूछा, न उसे कुछ बताया। जब साथ चुना था तब बहुत अनजान थे इसलिए कानून का आसरा लिया था पर जब साथ छूटा तब दोनों के अन्दर की सच्चाई दोनो के लिए कानून से कही अधिक तगडी हो चुकी थी

जानती हू—उसके बाद के वर्षो ने जो इन्साफ मेरे साथ किया है, वह मुझ से बिछुडे मेरे हमसफर के साथ नही किया। मुझे उसके बाद के वर्षों म इमरोज की हसीनतर दोस्ती मिल गयी पर उसे केवल अकेलापन मिला। उसे कुछ भी देते समय जिन्दगी के हाथ कजूस हो गए।

हम अब भी दोस्त की तरह मिलते हैं, पर जानती हू इतनी-सी चीज अकेलेपन को नही भर सकती। अकेलेपन का शाप जिस भी अच्छे मनुष्य ने झेला है उसके आगे सिजदे मे सिर झुक जाता है।

पर झुके हुए सिर मे भी एक मान है—सिर से भी ऊचा, कि जिस सुरक्षा का मैंने मोल नहीं दिया था और जो सामाजिक स्थान और घर घराने की आबरू मैंने जिन्दगी के गदर म ऐसे ही रास्ता चलते हासिल कर ली थी, वह लौटा सकी हू—एक कर्ज था उतार सकी हू।

जो अक्सर होता है वह मेरे साथ नही हुआ। अकसर कहानी के वे पात्र वर या विरोध के दाग कहानी को लगाते हैं, जिनका कहानी से निकट सबध होता है। और दूर-पार के लोगो मे स बहुत-से निर्लिप्त रहते हैं पर कुछ ऐसे होते है जो कुछ थोडा सा दर्द बटा लेते हैं।

पर मेरी कहानी से जिन्होंने बरसो विरोध रखा है वे कहानी के दूर पार के भी कुछ नही लगते थ—वे कुछ मेरे समकालीन लेखक थे कुछ वे रास्ता चलते हुए दफ्तर जाने वाले जिन्हे मेरे मन की तो क्या, सूरत की भी पहचान नही थी

और थ कुछ पजाबी अखबार (मेरे एक समकालीन ने मुझसे अलग हुए मरे खाविन्द के आगे यहा तक सगापन जताया था कि यदि वह एक बार कागज पर हस्ताक्षर कर दें तो वह कई बरस तक मुझे कचहरियो की खाक छनवाता रहता) पर जो इस कहानी के धागो म बुने हुए थे वे सदा चुपचाप अपने हिस्से की चीसो और पीडाओ को झेलते रहे। बरसो के बाद भी कही भेंट हो जाती तो आखें अदब से भर जाती। इन्ही आखो के बारे म आज भी विश्वास स कह सकती हू, इनका या आसू झेले हैं या अदब, इन्ह और किसी तीसरी चीज स वास्ता नही है।

मेरे और मुझसे अलग हुए मेरे साथी के रिश्ते की, मैंने देखा एक देविन्दर ने कुछ थाह पा ली थी। उसने जब मुझ पर 'कलम का भेद' पुस्तक लिखी और वह छपकर आयी, तो मैं उसका 'समपण' देखकर चकित हुई थी— किसी मन के और घर के उस दरवाजे के नाम जो ममता के लिए कभी बन्द नही हुआ' —और वह बडे आदर स यह किताब मेरे उस साथी को देने गया था जिसस मैं अलग हो चुकी थी।

अलग होने का अथ यह नही था कि 'सलाम तक न पहुचे'। बच्चो की किसी जरूरत के समय या मेरे इनकमटक्स के किसी झमेले के समय, या यू ही कुछ दिनों बाद मैं भी फोन कर लेती थी, वह भी। इस सादगी और स्वाभाविकता को बाहर के लोगो म अगर कोइ समझ सका तो वह आस्ट्रेलिया की एक लेखिका बटी कालिस है जो अपने पति से तलाक लेकर फिर हर कठिनाई के समय उसी से दोस्तो की भाति सलाह लेती है और उसके तलाक किए हुए पति की दूसरी पत्नी जब भी अपने पति के स्वभाव से कभी परेशान होती है तो वह बटी को फोन कर उससे मिलती है दोनों साथ काफी पीने जाती हैं और वह बेटी स सलाह लेती है कि अपन पति के स्वभाव स वह कसे निबाह कर सकती है।

ये सादगिया भी शायद खुद जिये बिना समझ की पकड म नही आती।

१६५६ की एक कब्र—एक भयानक पल

पिताजी जब तक जीवित थे सुनाया करते थ कि जिन्दगी की पहली भयानक हैरानी उन्ह उस समय हुई थी जब एक बार परदेश जाते समय उन्होने अपने नाना की सम्पत्ति म मिला गहनो और अशर्फियो से भरा हुआ एक ट्रक अपने शहर गुजरावाला की एक पूजनीय भक्त महिला कहलाने वाली स्त्री के पास धरोहर के रूप म रखा था, और जिसन बाद म केवल यही कहा था— कसा ट्रक ?

और १९५९ में अपने पिता के चेहरे की कल्पना करके जस में कह रही थी, 'आपके गुजरवाला की एक भक्तिन होती थी न, उसकी गुरु गद्दी पर बैठने वाली एक भक्तिन मैंने भी देखी है। मैंने उसके पास विश्वास से भरा हुआ एक टक जमानत के तौर पर रखा था और अब वह कह रही है—कैसा विश्वास ?"

यह बड़ा भयानक पल था। अंधेरा बादलों की तरह घिरता आ रहा था, उदासी बूंद बूंद बरस रही थी पर बादल खुलते नहीं थे। उस भले से चेहरे वाली लड़की का कई बरस प्यार किया था। बीते हुए दिन बादलों में नित बदलते रूप की तरह आंखों के आगे कई रूप धारण करने लगे। सोचने लगी—यह सब माया ऐसी यादों के लिए तो नहीं बनी थी

शरीर में से जैसे कोई चुभी हुई सुइयां निकालता है, एक एक याद को लेकर एक एक कहानी लिखी—'काले अक्षर', 'कर्मों वाली', केले का छिलका। और एक थी अनीता' उपन्यास में शांति बीबी का पात्र। पर उस 'शांति बीबी' ने जो-जो कुछ किया था, उसका कटोरा खत्म नहीं होता था। १९७० में फिर एक लम्बी कहानी लिखी—'दो औरतें (नम्बर पांच)' और उस कहानी की मिस वी' में लगा, वह बहुत हद तक समा गयी थी।

वह छोटी-सी बच्ची थी जब परिचित हुई थी। (उसके परिचय का पूरा विवरण दो औरतें (नम्बर पांच)' कहानी में है) उसके विवाह के समय, मेरे पास जो पाकिस्तान के बचे खुचे दो-तीन गहने थे वे दे दिए थे। उनका गम नहीं था, सिर्फ यह था—कि अंधेरा जब हंसता था, तो वे गहने भी बहुत जोर से हंसते थे—फिर समय बीतने पर ध्यान से देखा तो लगा—गहने नहीं, टूटे हुए विश्वास के टुकड़े थे, जो अंधेरे में चमकते थे और हंसते थे

उसकी मासूम-सी दिखनेवाली बातों को मैंने रेशमी धागों के समान गले से लगाया था, शिवजी ने सांपों को गले में डाला था, पर रेशमी धागे समझकर नहीं। सोचा करती थी, मैं शिवजी नहीं हूं फिर शिवजी ने मुझे अपनी तकदीर क्या दी ?

मैं धीमी से धीमी गंध भी सूंघ सकती हूं, पर झूठ की तेज से तेज गंध सूंघने की सूक्ष्म शक्ति नहीं थी।

यह शक्ति मेरे पिता में भी नहीं थी। छुटपन में आंखों से देखा था—उन्होंने सियालकोट के एक आदमी को पढ़ाया लिखाया फिर अपने पास नौकरी दी। पर एक बार उसने पिताजी के एक पत्र की ऊपर की लिखत फाड़कर हस्ताक्षर वाले स्थान से ऊपर के खाली स्थान में एक नयी लिखत लिख ली कि उन्होंने इतने हजार रुपया (पूरी रकम अब मुझे याद नहीं है) उससे उधार लिया है और कचहरी में दावा कर दिया। मैं उस व्यक्ति को मामाजी पुकारा करती थी। बहुत छोटी थी पर उस समय अपने पिता के चेहरे पर जो दुःख भरी हैरानी

देखी थी वही फिर १९५९ म मैंने अपने चेहरे पर देखी।

हैरान थी—घटनाओं की शक्लें कैसे मिल जाती हैं ? इस लडकी को पढाई के लिए किताबें दी थी फीसें दी थी, बिलकुल उसी तरह जैसे मेरे पिता ने एक रिश्तेदार बच्चे को पास रखकर पढाया था फिर आखिरी उम्र म जब वह जिला हजारीबाग चले गए कुछ एकड जमीन खरीदकर एक बगीचा लगाने का उन्हे चाव था उस लडके को साथ ले गए थे। सब कुछ उस बगीचे के नक्शो की लकीरो मे रह गया और मियादी बुखार से उनकी जिन्दगी खत्म हो गयी। उनकी खरीदी हुई जमीन के बारे म कुछ समय तक पत्र आते रहे फिर लम्बी खामोशी छा गयी। सोच भी नही सकता थी—पर पता लगा कि उस लडके ने गैर कानूनी तौर से वह जमीन बेच दी थी और सारी रकम जेब म डालकर चुप्पी साध ली थी। उसके बारे म और इसके बारे म सिर्फ एक ही फिकरा बचा रह गया—यह सोच भी नही सकती थी यह सोच भी नही सकती थी

यह १९५९ का वही पल है जब मैंने उस लडकी को अन्तिम बार देखा था, और आकाश से एक तारा टूटते हुए देखा था वह विश्वास का तारा था।

१९६०

यह बरस मेरी जिन्दगी का सबसे उदास बरस था, जिन्दगी के कलेंडर म फटे हुए पृष्ठ की तरह। मन ने घर की दहलीजो के बाहर पाव रख लिया था, पर सामने कोई रास्ता नही था इसलिए घबराकर कापने लगा।

साहिर को बम्बई फोन करने के लिए फोन के पास गयी थी कि अजीब सजोग हुआ था कि उस दिन के 'ब्लिटज' म तसवीर भी थी और खबर भी कि साहिर को जिन्दगी की एक नयी मुहब्बत मिल गयी है। हाथ फोन के डायल से कुछ इच दूर शून्य म खडे रह गए

उन्ही दिनो मैंने अपने मन की दशा को आस्कर वाइल्ड के इन शब्दो मे पहचाना था— मैंने मर जाने का विचार किया ऐसे भीषण विचार म जब जरा कुछ कमी हुई तो मैंने जीने के लिए अपना मन पक्का कर लिया। पर सोचा, उदासी को मैं अपना एक शाही लिबास बना लूगा, और हर समय पहने रहूगा जिस दहलीज के अन्दर पाव रखूगा, वह घर वैराग्य का स्थान बन जायेगा मेरे दोस्त मेरे पास मेरी उदासी के साथ-साथ चला करेंगे लोगो ने मुझे सलाह दी कि यह सब कुछ जो दु खदायी है मैं भूल जाऊ। मैं जानता हू इस तरह करना बिलकुल घातक है। इसका अर्थ है कि चाद सूरज की सुन्दरता सवेरे की पहली

किरनों का सगीत गहरी रातों की खामोशी, पत्तों मे से छनती हुई मेह की बूंदें, घास पर फिसलती हुई ओस, यह सब कुछ मेरे लिए कड़वा हो जाएगा अपने अनुभव से इनकारी होना ऐसा है जैसे अपनी जिन्दगी के होठों मे कोई हमेशा के लिए घूंट भर ले यह अपनी रूह से इनकारी होना है

इमरोज से दोस्ती थी पर अनेक प्रकार की दुविधाओं मे से गुजरती हुई। जिन्दगी की सब से उत्तम कविताएं मैंने इस वर्ष लिखी। उन दिनों का एक अजीब सपना मुझे एक एक अक्षर याद है—

गाड़ी मे सफर कर रही थी। सामने की सीट पर एक बुजुर्ग चेहरा था, बड़ा नम-सा और चमकता हुआ।

लम्बे सफर मे मैं किताबों के पन्ने पलटती रही, और फिर मेरी खामोश किताबों ने उस बुजुर्ग को बातों मे लगा लिया। उसने मुझसे पूछा, 'तुमने कभी काला गुलाब देखा है ?'

'काला गुलाब ?—नही तो।'

'थोड़ी देर मे यहां एक स्टेशन आएगा वहां से एक रास्ता एक छोटे-से गांव को जाता है। उस गांव मे गुलाब के फूलों का एक बाग है, उस बाग मे थोड़े-से लाल रंग के गुलाब हैं बाकी सारा बाग काले गुलाब के फूलों से भरा हुआ है।'

'सच ?

'तुम्हें मैं विश्वास के काबिल जान पड़ता हूं या नहीं ?'

मैंने तो अविश्वास की कोई बात नही कही।

'तुम वह बाग देखना चाहोगी ?'

'मैं यही सोच रही थी—अगर मैं वह बाग देख सकूं '

उसकी एक कहानी भी है '

क्या ?'

अगर तुम उसे देखने चलो तो मैं वहां पर ही यह कहानी सुनाऊंगा।'

मैं चलूंगी।'

और फिर एक स्टेशन पर मैं और वह बुजुर्ग आदमी उतर गए। एक लम्बा कच्चा रास्ता पकड़ लिया। वहां कोई सवारी नही जाती थी—और फिर सचमुच हम एक बाग मे पहुंच गए।

इतना बड़ा और चमकदार गुलाब मैंने जिन्दगी मे कभी नहीं देखा था। गुलाब की पत्तियों पर से आंख फिसल फिसल पड़ती थी। बहुत बड़ा बाग था—एक छोटे-से हिस्से मे लाल रंग के गुलाब थे और एक छोटे हिस्से मे सफेद दूधिया रंग के। बाकी सारा बाग, मीलों मे फैला हुआ, काले गुलाबों से भरा हुआ था।

इसकी कहानी ?'

'कहते हैं एक औरत थी। उसने बड़े सच्चे मन से किसी से मुहब्बत की। एक बार उसके प्रेमी ने उसके बालों में लाल गुलाब का फूल अटका दिया। तब औरत ने मुहब्बत के बड़े प्यारे गीत लिखे।

वह मुहब्बत परवान नहीं चढ़ी। उस औरत ने अपनी जिन्दगी समाज के गलत मूल्यों पर न्योछावर कर दी। एक असह्य पीड़ा उसके दिल में घर कर गयी और वह सारी उम्र अपने कलम को उस पीड़ा में डुबोकर गीत लिखती रही।

आत्म-वेदना एक वह दृष्टि प्रदान करती है, जिससे कोई परायी पीड़ा को देख सकता है। उसने अपनी पीड़ा में समूची मानवता की पीड़ा को मिला लिया और फिर ऐसे गीत लिखे जिनमें केवल उसकी नहीं, जगत की पीड़ा थी।

फिर ?'

जब वह औरत मर गयी, उसे इस धरती में दफना दिया गया। उसकी कब्र पर न जाने किस तरह गुलाब के तीन फूल उग आए। एक फूल लाल रंग का था, एक काले रंग का और एक सफेद रंग का।

अजीब बात है!'

और फिर वे फूल अपने आप ही बढ़ते गए। न किसी ने पानी दिया, न किसी ने देखभाल की। और धीरे-धीरे यहां एक फूलों का बाग बन गया।

अब तुमने अपनी आंखों से देख लिया है एक हिस्से में लाल रंग के गुलाब हैं, एक हिस्से में सफेद रंग के और बाकी सारे हिस्से में काले रंग के।'

लोग क्या कहते हैं ?

लोग कहते हैं उस औरत ने जो मुहब्बत के गीत लिखे वे लाल रंग के गुलाब बन गए हैं, जो दर्द भरे गीत लिखे वे गुलाब काले रंग के हो गए हैं—और जो उसने मानव-प्रेम के गीत लिखे वे सफेद गुलाब के फूल बन गए हैं।'

सिर से पैर तक मुझे एक कंपन आया, और मैंने उस बुजुर्ग से पूछा, 'आपका नाम क्या है ?'

मेरा नाम ?—मेरा नाम समय।'

समय! आप मेरी कहानी ही मुझे सुना रहे हैं ?'

समय की मुसकराहट और मेरे अपने कंपन के कारण मेरी आंख खुल गयी। और उन्हीं दिनों लिखा—

> दुखान्त यह नहीं होता कि रात की कटोरी को कोई ज़िन्दगी के शहद से भर न सके और वास्तविकता के होंठ कभी उस शहद को चख न सकें—
>
> दुखान्त यह होता है जब रात की कटोरी पर से चन्द्रमा की कलई उतर जाए और उस कटोरी में पड़ी हुई कल्पना कसैली हो जाए।

दु खान्त यह नही होता कि आपकी किस्मत से आपके साजन का नाम पता न पढा जाए और आपकी उम्र की चिट्ठी सदा रुलती रहे।

दु खान्त यह होता है कि आप अपने प्रिय को अपनी उम्र की सारी चिट्ठी लिख ल और फिर आपके पास से आपके प्रिय का नाम पता खो जाए

दु खान्त यह नही होता कि जिन्दगी के लबे डगर पर समाज के बधन अपने काटे बिखेरते रहें, और आपके पैरो म मे सारी उम्र लहू बहता रहे।

दु खान्त यह होता है कि आप लहू लुहान पैरो से एक उस जगह पर खडे हो जाए जिसके आगे कोई रास्ता आपको बुलावा न दे।

दु खान्त यह नहीं होता कि आप अपने इश्क के ठिठुरते शरीर के लिए सारी उम्र गीतो के पैरहन सीते रहे।

दु खान्त यह होता है कि इन पैरहनो को सीने के लिए आपके पास विचारों का धागा चुक जाए और आपकी कलम-सूई का छेद टूट जाए

उस वर्ष के अत मे मैं एक साइकेट्रिस्ट के इलाज मे भी रही अपने आप को जानने के लिए और उसके कहने के अनुसार हर रोज के अपने विचारो और स्वप्नो को कागज पर लिखा करती थी। उन्ही दिनो के अजीबो गरीब सपनो म स जो डाक्टर के पढ़ने के लिए लिखे थे, कुछ ये हैं—

१

किसी बहुत ऊची इमारत के शिखर पर मैं अकेले खडे होकर अपने हाथ म लिये हुए कलम से बातें कर रही थी—'तुम मेरा साथ दोगे ?—कितने समय मेरा साथ दोगे ?

अचानक किसी ने कसकर मेरा हाथ पकड लिया।

'तुम छलावा हो, मेरा हाथ छोड दो।' मैंने कहा, और जोर से अपना हाथ छुडाकर उस इमारत की सीढिया उतरने लगी।

मैं बडी तेजी से उतर रही थी पर सीढिया खत्म होने म नही आती थी। मेरा सास तेज होता जा रहा था, डर रही थी कि अभी पीछे स आकर वह छलावा मुझे पकड लेगा।

आखिर सीढिया खत्म हो गयी पर नीचे उतरकर देखा, सब ओर बाग ही बाग थ और जमीन का चप्पा चप्पा लोगो से भरा हुआ था। ये बाग भी उसी इमारत का हिस्सा थे और वहा लोगों का मेला लगा हुआ था। किसी तरफ लोग

नाटक खेल रहे थे, और किसी तरफ कोई मच हो रहा था।

न जाने वहा से मेरी पुरानी साइकिल मुझे मिल गयी और मैं उस पर चक्कर बाहर जाने का रास्ता खोजने लगी। बागों के किनारे किनारे साइकिल चलाते हुए मैं जिस तरफ भी जाती थी वहा आगे पत्थर की दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नहा मिलता था। मैं फिर किसी और तरफ साइकिल मोड लेती थी, पर वहा भी अत म एक दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नही मिलता था—इसी घबराहट म मेरी आख खुल गयी।

२

सफेद सगमरमर का एक बुत मेरे सामने पडा हुआ था। मैं उसकी ओर देखती रही देखती रही और फिर मैंने उससे कहा— मैं तुम्हारा क्या करूगी ! न तुम बोलते हो और न सास लेते हो। आज मैं तुम्हे तोड दूगी—तुम्हारे टुकडे टुकडे कर दूगी—तुमने मेरी सारी उम्र गवा दी है—मेरा तसव्वुर तुम मेरे आदर्श ' और जब मैंने उस बुत को जोर से पर फेंका, तो मैं अपने ही जोर के कारण जाग गयी।

३

मैंने देखा मेरे पास एक लडकी खडी हुई है। कोई बीस बरस की होगी। पतली लबी, और उसका एक एक नक्श जसे किसी ने बडी मेहनत से गढा हो। पर उसका रग काला और चमकदार—जैसे किसी ने काले पत्थर को तराश कर एक बुत बनाया हो।

यह कौन है ?' मुझसे किसी ने पूछा।

'मेरी बेटी। मैंने उत्तर दिया।

पूछने वाला कौन था, यह मुझे नही मालूम पर उसने फिर चकित होकर पूछा मैंने तेरे दो बच्चे देखे है, व बडे सुन्दर हैं। सुन्दर तो यह भी है पर इसका रग '

वे दोनो छोटे है उनका रग गोरा है। यह मेरी सबसे बडी बेटी है। तुम जानते हो पार्वती ने एक बार अपने शरीर के मल को इकट्ठा करके एक पुत्र, गणेश बना लिया था—मैंने अपने मन के सारे रोष को बटकर यह बेटी बनायी है मेरी कला मेरी कृति '

४

मैं एक उजाड जगह से गुजर रही थी। मुझे किसी की शक्ल नजर नहा आयी लेकिन एक आवाज सुनाई पडी। कोई गा रहा था— बुरा कीतोई साहिबा मेरा तरकश टगयोई जड।"[१]

---

१ साहिबां ! तूने बुरा किया मेरा तरकश पेड पर टाग दिया।

'तुम कौन हो ?' मैंने उस उजाड म खडे होकर चारो ओर देखकर कहा।

मैं बहादुर मिर्जा हू। साहिबा न मेरे तीर छिपा दिए और मुझे लोगो के हाथो बे-आयी मौत मरवा दिया।'

मैंने फिर चारो ओर देखा, पर मुझे किसी की सूरत दिखाई नही दी। मैंने उत्तर दिया—'कभी-कभी कहानिया करवट बदल लेती हैं आज एक मिर्जा ने मेरे तीर छिपा दिए हैं और मुझे एक बहादुर साहिबा को, बे-आयी मौत मरवा दिया है।'

५

बादल बडे जोर से गरजे। सारा आसमान काप उठा। और फिर मेरे दाहिने हाथ पर बिजली गिर पडी।

मेरे सारे शरीर को एक सख्त जोर का झटका लगा, और फिर मैंने सभलकर अपने हाथ को हिलाकर देखा। हाथ बिलकुल ठीक था, केवल एक जगह से थोडा लहू बह रहा था मानो एक खराच आ गयी हो।

दूसरी बार फिर बिजली कडकी और मेरे उसी हाथ पर गिर पडी। फिर एक सख्त झटका लगा और मैंने जब हाथ को हिलाकर देखा तो वह बिलकुल साबुत था केवल एक जगह ऐसा था मानो मामूली-सी रगड लग गयी हो।

तीसरी बार फिर आसमान दो टुकडे हो गया और मेरे उसी हाथ पर बिजली गिर पडी। सख्त झटका लगा, पर उसके बाद जब मैंने हाथ को हिलाया हाथ हिलता अवश्य था, पर एक उगली टेढी हो गयी थी। मैंने अपने दूसरे हाथ से उस उगली को दबाया, बार बार दबाया, तो वह सीधी हो गयी, अपनी जगह आ गयी—मैंने अपने हाथ म कलम पकडकर देखा, मेरा हाथ बिलकुल ठीक था, मेरा कलम अभी भी लिख रहा था।

इस समय मेरे मन की हालत बादलेयर पर के मन-जैसी थी, जब उसने 'सुन्दरता की बिरद' लिखी थी।

तुम ऊचे आसमान से उतरी हो
या गहरे पाताल से निकली हो ?
तुम्हारी दृष्टि निरी शराब
दैत्यमय भी देवमय भी।

तुम्हारी आखो म
साझ भी भोर भी।
तुम्हारी सुगध जैसे साझ की आधी

नाटक खेल रह थे, और किसी तरफ कोई मच हो रहा था।

न जाने कहा से मेरी पुरानी साइकिल मुझे मिल गयी और मैं उस पर चक्कर बाहर जान का रास्ता खोजन लगी। बागा के किनारे किनारे साइकिल चलाते हुए मैं जिस तरफ भी जाती थी वहा आग पत्थर की दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जान का रास्ता नही मिलता था। मैं फिर किसी और तरफ साइकिल मोड लती थी पर वहा भी अत म एक दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नही मिलता था—इसी घबराहट म मेरी आख खुल गयी।

२

सफेद सगमरमर का एक बुत मरे सामने पडा हुआ था। मैं उसकी आर देखती रही देखती रही, और फिर मैंने उससे कहा— मैं तुम्हारा क्या करूगी! न तुम बोलते हो और न सास लेते हो। आज मैं तुम्हे तोड दूगी—तुम्हारे टुकडे टुकडे कर दगी—तुमन मरी सारी उम्र गवा दी है—मरा तसव्वुर तुम मेरे आदश ' और जब मैंने उस बुत को जार से पर फेंका तो मैं अपने ही जार के कारण जाग गयी।

३

मैंने देखा मरे पास एक लडकी खडी हुई है। कोई बीस बरस की होगी। पतली लबी और उसका एक एक नक्श जस किसी न बडी मेहनत से गढा हो। पर उसका रग काला और चमकदार—जस किसी ने काले पत्थर को तराश कर एक बुत बनाया हो।

यह कौन है ?' मुझसे किसी ने पूछा।

मेरी बेटी। मैंने उत्तर दिया।

पूछने वाला कौन था, यह मुझे नही मालूम पर उसने फिर चकित होकर पूछा 'मैंने तर दो बच्चे देखे हैं व बडे सुदर हैं। सुदर तो यह भी है पर इसका रग '

वे दोना छोटे हैं उनका रग गोरा है। यह मरी सबसे बडी बेटी है। तुम जानते हो पावती न एक बार अपने शरीर के मल का इकटठा करके एक पुत्र, गणेश बना लिया था—मैंने अपने मन के सारे रोष को बटकर यह बेटी बनायी है मेरी कला मरी कृति '

४

मैं एक उजाड जगह से गुजर रही थी। मुझे किसी की शक्ल नजर नहीं आयी, लेकिन एक आवाज सुनाई पडी। कोई गा रहा था— बुरा कीत्तोई साहिबा मेरा तरकश टगयोई जड।[1]

---

[1] साहिबा! तून बुरा किया मरा तरकश पेड पर टाग दिया।

'तुम कौन हो ?' मैंने उस उजाड म खडे होकर चारो ओर देखकर कहा।

मैं बहादुर मिर्जा हू। साहिबा ने मेरे तीर छिपा दिए और मुझे लोगा के हाथा बे-आयी मौत मरवा दिया।'

मैंने फिर चारो ओर देखा, पर मुझे किसी की सूरत दिखाई नहीं दी। मैंने उत्तर दिया—'कभी-कभी कहानिया करवट बदल लेती हैं, आज एक मिर्जा ने मेरे तीर छिपा दिए हैं, और मुझे, एक बहादुर साहिबा को बे-आयी मौत मरवा दिया है।'

५

बादल बडे जोर से गरजे। सारा आसमान काप उठा। और फिर मेरे दाहिने हाथ पर बिजली गिर पडी।

मेरे सारे शरीर को एक सख्त जोर का झटका लगा, और फिर मैंने सभलकर अपने हाथ को हिलाकर देखा। हाथ बिलकुल ठीक था, केवल एक जगह से थोडा लहू बह रहा था, मानो एक खरोच आ गयी हो।

दूसरी बार फिर बिजली कडकी और मेरे उसी हाथ पर गिर पडी। फिर एक सख्त झटका लगा और मैंने जब हाथ को हिलाकर देखा तो वह बिलकुल साबुत था केवल एक जगह ऐसा था मानो मामूली-सी रगड लग गयी हो।

तीसरी बार फिर आसमान दो टुकडे हो गया और मेरे उसी हाथ पर बिजली गिर पडी। सख्त झटका लगा, पर उसके बाद जब मैंने हाथ को हिलाया हाथ हिलता अवश्य था, पर एक उगली टेढी हो गयी थी। मैंने अपने दूसरे हाथ से उस उगली को दबाया, बार बार दबाया तो वह सीधी हो गयी, अपनी जगह आ गयी—मैंने अपने हाथ म कलम पकडकर देखा, मेरा हाथ बिलकुल ठीक था, मेरा कलम अभी भी लिख रहा था।

इस समय मेरे मन की हालत बॉदलेयर पर के मन जैसी थी, जब उसने 'सुन्दरता की बिरद' लिखी थी।

तुम ऊचे आसमान से उतरी हो
या गहरे पाताल से निकली हो ?
तुम्हारी दृष्टि निरी शराब
दैत्यमय भी देवमय भी।

तुम्हारी आखा म
साझ भी भोर भी।
तुम्हारी सुगध, जसे साझ की आंधी,

तुम्हारे होठ दारू की एक घूट
तुम्हारा मुख एक जाम

तुम किसी खोह खन्दक मे से उभरी हो
या तारो से उतरी हो ?
तुम एक हाथ स खुशी बीजती हो
दूसरे से तबाही
तुम्हारे गहनो की छटा कितनी भयानक !
तुम्हारा आलिगन
जैसे कोई क्ब्र म उतरता जाए

इसी वष के आरभ म २६ जनवरी के गणतत्र दिवस पर भारत सरकार की ओर से मैं नेपाल गयी थी पर मन की बडी उखडी हुई दशा थी, और वहा स जो पत्र इमरोज को लिखे थे वे यह थे—

।

> कल नेपाल ने मेरे उस कलम का सत्कार किया जिससे मैंने तुम्हारे लिए मुहब्बत के गीत लिखे। इसलिए मुझे जितने फूल मिले मैंने सारे तुम्हारी याद पर चढा दिए।
> हिजर दी इस रात विच कुझ रोशनी आवदी पई[1]—मेरी इस कविता म तुम्हारी याद की बत्ती जल रही थी। रात साढे ग्यारह बजे तक इस रोशनी का जिक्र होता रहा। पास कितनी ही नेपाली, हिन्दी और बगाली कविताए जल रही थी। एक फारसी का शेर था—रेगिस्तान म हम लोग धूप से चमकती हुई रेत को पानी समझकर दौडते है भुलावा खाते हैं तडपते हैं।
> पर लोग कहते है रेत रेत है पानी नही बन सकती। और कुछ सयाने लोग उस रेत को पानी समझने की गलती नही करते। वे लोग सयाने होंगे पर मैं कहता हू जो लोग रेत को पानी समझने की गलती नही करते उनकी प्यास में जरूर कोई कसर होगी।'—सच मेरे छलावे! मेरे सयानपन म कोई कसर हो सकती है पर मेरी प्यास म कोई कसर नहीं
> २७ जनवरी १९६०

---

१ हिज्र की इस रात म कुछ रोशनी-सी आ रही

१

'राही ! तुम मुझे सध्या वेला म क्या मिले ?
जिन्दगी का सफर खत्म होन वाला है। तुम्हे मिलना था तो जिन्दगी की दोपहर के समय मिलते, उस दोपहर का सेंक तो देख लेते'—
काठमाडू म किसी ने यह हिन्दी कविता पढी थी। हर व्यक्ति की पीडा उसकी अपनी होती है, पर कई बार इन पीडाओ की आकृतिया मिल जाती हैं। यह मेरी प्रतीक्षा तुम्हारे शहर की जालिम दीवारो स टकराकर सदा घायल होती रही है। पहल भी चौदह वष (राम-वनवास की अवधि) इसी तरह बीत गए और लगता है मेरी जिन्दगी के बाकी वष भी अपनी उसी पक्ति म जा मिलेंगे
१ फरवरी, १६६०

१६६१

इस वष के आरम्भ म मेरी जो दशा थी उसे उस समय इन शब्दो म लिखा था—

हिन्दू धम के अनुसार जीवन के चार पडाव होते हैं चार वण, चार आश्रम। इनके सबध म मुझे बहुत जानकारी नही है, पर जीवन के सफर म मैंने अपनी मानसिक अवस्था के चार पडाव अवश्य देखे है, और इनके सबध म कुछ विस्तार से कह सकती हू—

पहला पडाव था अचेतनता, यह बाल बुद्धि के समान थी, जिसे हर वस्तु एक अचभा लगती है। जिसे छोटी से छोटी वस्तु मे बडी-से बडी दिलचस्पी पदा हो जाती है और जो पल म बिलख उठती है और पल म हर्षित हो जाती है।

दूसरा पडाव था चेतनता। यह एक भरपूर अगो वाली उच्छृखल जवानी के समान थी जिसका रोप बडा प्रचड होता है, बडा रक्तिम जो जीवन के गलत मूल्यो से जब रूठ जाती है मनन म नही आती और जो एक सप के समान नफरत की मणि समझकर अपन मस्तिष्क म सभाले रखती है।

तीसरा पडाव था दिलेरी। वतमान का उधेडन वाली और भविष्य को सीन वाली दिलेरी। सपनो को ताश के पत्तो की भाति मिलाकर और बांटकर कोई खेल खेलने वाली दिलेरी जिसकी कोई

तुम्हारे होठ, दारू की एक घूट
तुम्हारा मुख एक जाम

तुम किसी खोह खन्दक म से उभरी हो
या तारा स उतरी हो ?
तुम एक हाथ स खुशी बीजती हो
दूसरे से तबाही
तुम्हारे गहनो की छटा कितनी भयानक !
तुम्हारा आलिंगन
जसे कोई कब्र म उतरता जाए

इसी वष के आरभ मे २६ जनवरी के गणतत्र दिवस पर भारत सरकार की ओर से मैं नेपाल गयी थी, पर मन की बडी उखडी हुई दशा थी, और वहा से जो पत्र इमरोज को लिखे थे व यह थे—

कल नेपाल ने मर उस कलम का सत्कार किया जिससे मैंने तुम्हारे लिए मुहब्बत के गीत लिखे। इसलिए मुझे जितने फूल मिले मैंने सारे तुम्हारी याद पर चढा दिए।

हिजर दी इस रात विच कुप रोशनी आवदी पई[1]—मेरी इस कविता म तुम्हारी याद की बत्ती जल रही थी। रात साढे ग्यारह बजे तक इस रोशनी का जिक्र होता रहा। पास कितनी ही नेपाली, हिन्दी और बगाली कविताए जल रही थी। एक फारसी का शेर था—रेगिस्तान म हम लोग धूप से चमकती हुई रेत को पानी समझकर दौडते हैं भुलावा खाते हैं तडपत हैं।

पर लोग कहते हैं रेत रेत है पानी नही बन सकती। और कुछ सयाने लोग उस रत को पानी समझने की गलती नहा करते। वे लोग सयाने होंगे पर मैं कहता हू जो लोग रेत को पानी समझने की गलती नही करते उनकी प्यास मे जरूर कोई कसर होगी।'—सच मेरे छलावे! मेरे सयानेपन म कोई कसर हो सकती है, पर मेरी प्यास म कोई कसर नही

२७ जनवरी १९६०

---

१ हिज्र की इस रात म कुछ राशनी-सी आ रही

।

राही ! तुम मुझे सध्या वेला म क्या मिले ?
जिदगी का सफर खत्म होने वाला है। तुम्हे मिलना था तो जिदगी की दोपहर के समय मिलत, उस दोपहर का सेंक तो देख लेते — काठमाडू म किसी न यह हिदी कविता पढी थी। हर व्यक्ति की पीडा उसकी अपनी होती है, पर कई बार इन पीडाओ की आकृतिया मिल जाती हैं। यह मेरी प्रतीक्षा तुम्हारे शहर की जालिम दीवारो से टकराकर सदा घायल होती रही है। पहले भी चौदह वप (रामवनवास की अवधि) इसी तरह बीत गए और लगता है मेरी जिदगी के बाकी वप भी अपनी उसी पक्ति म जा मिलेंगे
१ फरवरी, १९६०

१९६१

इस वप के आरम्भ म मेरी जो दशा थी उसे उस समय इन शब्दो म लिखा था—

हिदू धम के अनुसार जीवन क चार पडाव होत हैं चार वण, चार आश्रम। इनके सबध म मुझे बहुत जानकारी नही है, पर जीवन के सफर म मैंने अपनी मानसिक अवस्था के चार पडाव अवश्य देखे हैं और इनके सबध म कुछ विस्तार स कह सकती हू—

पहला पडाव था अचेतनता, यह बाल बुद्धि के समान थी जिसे हर वस्तु एक अचभा लगती है। जिसे छोटी से छोटी वस्तु म बडी स-बडी दिलचस्पी पदा हो जाती है और जो पल म बिलख उठती है और पल मे हर्पित हो जाती है।

दूसरा पडाव था चेतनता। यह एक भरपूर अगो वाली, उच्छ खल जवानी के समान थी, जिसका रोप बडा प्रचड होता है, बडा रक्तिम, जो जीवन क गलत मूल्यो स जब रूठ जाती है, मनने म नही आती और जो एक सप के समान नफरत को मणि समझकर अपने मस्तिष्क म सभाल रखती है।

तीसरा पडाव था दिलेरी। वतमान को उधेडने वाली और भविष्य को सीन वाली दिलेरी। सपनो को ताश के पत्तो की भाति मिलाकर और बाटकर कोई खेल खेलने वाली दिलरी, जिसकी कोई

भी हार शाश्वत हार नही होती जिसके पत्ते फिर से मिलाए जा सकते हैं और जीत की आशा फिर बाधी जा सकती है।

और अब चौथा पडाव है अकेलापन।

तीन-चार वर्ष पूर्व जब वियतनाम के प्रेसिडेंट हो ची मिन्ह दिल्ली आये थे तो एक मुलाकात मे उन्होने मेरा माथा चूमकर कहा था— हम दोनो दुनिया के गलत मूल्यो से लड रहे हैं—मैं तलवार से तुम कलम से।' और हो ची मिन्ह के व्यक्तित्व का मुझ पर ऐसा प्रभाव पडा था कि उनके जाने के बाद मैंने एक कविता लिखी जो वियतनाम मे २६ मई १९५८ के अखबार 'हान दान' म छपी थी, पर यह नही मालूम कि वह हो ची मिन्ह की नजर मे गुजरी या नही।

फिर दिल्ली रेडियो के लिए जब विश्व के कुछ लोकगीत' अनुवाद करके एक धारावाहिक क्रम मे प्रस्तुत किए तो उन्हें पुस्तक रूप मे प्रकाशित करते समय वह पुस्तक 'आशमा' हो ची मिन्ह के शब्द दोहराते हुए उन्ह ही अपण कर दी थी। १ मार्च, १९६१ थी जब वियतनाम से मुझे हो ची मि न्ह का तार आया—I send you my friendliest admiration and kindest greetings —तो मन की दशा कुछ बदली। साथ ही एक अग्रेजी फिल्म याद आयी जिसम महारानी एलिजाबेथ जिस नवयुवक से मन ही मन प्यार करती है उसे जब समुद्री जहाज देकर एक काम सौंपती है तो दूर से दूरबीन लगाकर जाते हुए जहाज को देखकर परेशान हो जाती है। देखती है कि नौजवान की प्रेमिका भी जहाज पर उसके साथ है। वे दोनो डैक पर खडे हैं उस समय महारानी को परेशान देखकर उसका एक शुभचिन्तक कहता है मैडम ! लुक ए बिट हायर'—ऊपर, उस नवयुवक और उसकी प्रमिका के सिरो स ऊपर, महारानी के राज्य का झडा लहरा रहा था।

और मैं अपने आप से स्वय ही कहती— अमता ! लुक ए बिट हायर !' और मैं जिन्दगी की सारी हारो और परेशानियो से ऊपर देखन की कोशिश करने लगी—जहा मेरी कृति थी मेरी कविताए मेरी कहानिया मेरे उपन्यास

उस वर्ष जिन्दगी ने भी मेरी मदद की, मरी नजर ऊपर की। मार्च म ही मास्को की राइटस यूनियन की ओर से बुलावा मिला और उजबक कवयित्री जुल्फिया खानम का पत्र कि ताशकद म मैं उसके घर उसकी मेहमान रहू। यह सारा श्रेय अपने रूसी दोस्तो का देती हू कि उन्होने मरे मन के बडे नाजुक समय में मुझे यह बुलावा देकर मुझे उदासी की गहरी यत्रणा से निकाल लिया। मैं २३ अप्रैल को ताशकन्द चली गयी। मेरी उस समय की १९६१ की डायरी म कई प्यारे पन्नो की यादें अकित हैं—

जुल्फिया के दिल का जाम मुहब्बत से भरा हुआ है और दस्तरखान पर शीशे का प्याला अनार के रस से। दोना लाल प्याला म बारी बारी घूट भरते

हुए मैं उज़बेक पुस्तकों के पन्ने पलटती रही। मुझमें और पुस्तकों के बीच भाषा की दीवार है पर एक पुस्तक की जिल्द पर एक प्यारी लड़की की तसवीर है जिसकी आंख में एक आंसू लटका हुआ है। लगा, वह आंसू भाषा की दीवार फांद कर मेरे आंचल में आ गिरा। मैंने कहा—'जुल्फिया! इन आंसुओं और औरत की आंखों का न जाने क्या रिश्ता है कोई मुल्क हो यह रिश्ता बना ही रहता है'

जुल्फिया ने कहा—'जब दो मन इस रिश्ते को समझ लेते हैं, तब—उस समय की बलिहारी—उनमें भी एक अटूट रिश्ता हो जाता है। मुझे लगता है, अमृता और जुल्फिया भी जैसे एक औरत के दो नाम हैं' और जुल्फिया ने मेरे लिए उन्नीसवीं शताब्दी की उज़बेक कवयित्री नादिरा की कविताएं पढ़ीं, और हम कितनी ही देर तक नादिरा और महजूना के काव्य में डूब रहे

आज समरकंद में एक कवि आरिफ ने 'लाला' के दो फूल लाकर हम दोनों को दिए। दोनों का रंग लाल, और एक-सी सुगंध थी पर मैंने और जुल्फिया ने आपस में वे फूल बदल लिए जैसे मेरे देश में दो सहेलियां अपनी चुनरियां बदल लेती हैं

जुल्फिया कहने लगी—'दो फूल पर एक खुशबू। दो देश, दो भाषाएं दो दिल पर एक दोस्ती'

फिर कुछ पल बाद जुल्फिया ने कहा 'पर इन फूलों में दर्द का दाग नहीं है, हमारे दिलों में दर्द के दाग हैं'

मुझे नादिरा का शेर याद आया जिसमें वह बुलबुल से कहती है कि अगर तेरे गले के गीत चुक गए हैं तो इस नादिरा के कलाम से फरियाद ले जा, और मैंने कहा, मैं लाला फूल से कहती हूं कि अगर तुझे अपने दिल के लिए दर्द के दाग नहीं मिले तो मुझसे या जुल्फिया से कुछ दाग उधार ले जा।

जुल्फिया को कुछ याद आ गया। कहने लगी 'हां लाला के ऐसे फूल भी होते हैं जिनकी छाती में काले दाग होते हैं। चलो खेतों में फूल ढूंढ़ें।'

फिर मैं और जुल्फिया खेतों की मेंड़ मेंड़ चलते हुए वे दागदार फूल ढूंढ़ते रहे

नबी जान, मेरा उज़बेक दुभाषिया, साथ था। वह लाला का एक खास फूल खोज कर ले आया और मुझसे कहने लगा 'इस फूल की छाती में हिज्र के काले दाग तो नहीं हैं पर रोशनी के सिल्की दाग जरूर हैं।

फूल की पंखुड़ियों में छिपे हुए सचमुच सिल्की रंग के निशान थे। मैंने उसका शुक्रिया अदा किया और जुल्फिया से कहा, 'ये दाग शायद इसलिए रोशन हैं क्योंकि इनमें याद के चिराग जल रहे हैं'

जुल्फिया मुसकराई कहने लगी, 'अमृता! क्या यह यादें हमारी अपनी ही

, करामात नही हैं ? नही तो ये मद '

और हम मर्दों की बात को बीच म ही छोडकर अपनी कविताओ, अपनी करामाता की बातें करते रहे

ताशकद मे आजकल हिन्दुस्तान से उर्दू कवि अली सरदार जाफरी भी आए हुए हैं। आज अचानक मुलाकात हो गयी तो जुल्फिया ने उन्ह अपने घर दावत पर बुला लिया। दावत म एक टोस्ट पेश करते हुए जुल्फिया ने कहा, हमारे देश म छोटी लडकी को खान और बडी को खानम' कहत हैं सो अमता का नाम बनता है अमता खानम। अगर हम अमता लफ्ज का उजबेक भाषा म अनुवाद करें तो बनता है उलमस। सो मैं उलमस खानम के नाम पर टोस्ट पेश करती हू।'

जवाब म अली सरदार जाफरी न जुल्फ शब्द का अनुवाद हिन्दी म किया अलक और जुल्फिया के नाम का भारतीयकरण करके 'टोस्ट पेश किया अलका कुमारी के नाम !

टोस्ट पेश करन की मेरी बारी आयी ता मैंने एक कविता की दो पक्तियां पढी [१]

चिरा विछुनी कलम जिस तरहा घुटक कागज दे गल लग्गी
भेद इश कदा खुलदा जावे
इक सतर पजाबी द विच इक सतर उजबक सुणी व
फेर काफिया मिलदा जाव '

उजबेकिस्तान की एक वादी का नाम खाबीद हसीना हुआ करता था, सोयी हुई सुदरी पर जब जब वह समाजवादी राज्य के बाद कामो से ब्याही गयी है तो उसका नाम फरगाना वादी हो गया है। यहा रेशम की मिलें हैं। लोग कहत हैं—'एक वष म यह वादी जितना रशम बुनती है अगर उसका एक सिरा धरती पर रखें तो दूसरा चाद तक पहुच जाएगा इन रेशम की मिलो की डायरेक्टर औरतें हैं उन्होंने अपनी मिलें दिखायीं मुम रगीन रशम का एक कपडा सौगात दिया और मुझसे सदेशा मागा। कल पहली मई है विश्व भर क

---

१ चिरकाल स विछुडी हुई कलम जिस तरह कसकर कागज क गल लगी है
और इश्क का राज खुलता जा रहा है
एक पक्ति पजाबी म है और एक पक्ति उजबक म
फिर भी काफिया मिलता जा रहा है।

मजदूरा का दिन—सो, दा पक्तियो की एक कविता मे सदेशा दिया '

कुडिये रेशम कत्तदीए ?
मई महीना पूरन आया, लक्ख मुरादा तेरिया
कुडिय सुपण उणदीए !
पच्छी दे विच रख ल लख दुआवा मेरिया '

एा खान ने दस्तरखान पर कोन्याक, शहद और अनार का रस रखकर मुचस पूछा, 'बताओ मेरी महमान ! मैं तुम्हारे लिए क्या गाऊ ?'

मैंन कहा, 'एना ! अपने देश का वह गीत गाओ, जो कोयाक जैसा तल्ख हो शहद जसा मीठा और अनार के रस जसा लाल '

वह हसने लगी—'अच्छा, और भेड के भुन हुए मास जैसा आशिकाना गीत !'

उसने और लाला खानम न आज बहुत प्यारे गीत गाए। अन्त म लाला खानम ने यह भी गाया— यह हमारे माथ का नसीब, कि हमने तुझे ढूढ लिया, आज तू हमार देश की मेहमान '

इस दस्तरखान के लिए शुक्रिया अदा करत हुए मेर दिल की तहें भी उनक प्यार से भीग गयी। कहा कभी मैंने एक गीत लिखा था कि जिन्दगी मुझे अपने घर बुलाकर मेहमानवाजी करना भूल गयी, पर आज मैं अपना यह शिकवा वापस लेती हू '

आज ताशकद से स्तालिनाबाद आयी हू। जुल्फिया साथ नही आ सकी, अकेली आयी हू। हवाई अडडे पर कितने ही ताजिक लेखक आए हुए हैं उनम ताजिकिस्तान के सबस बडे कवि मिर्जा तुसनजादे भी हैं

उनस मिली तो मैंने कहा, 'महान ताजिक शायर को मेरा सलाम ! आपके लिए लाए हुए एक और सलाम की मैं कासिद भी हू वह सलाम जुल्फिया का है। हमारे उर्दू शायर फैज अहमद फ़ज के शब्दों म शायर सलाम लिखता है तर हुस्न के नाम !'

तो मिर्जा तुमनजादे बहुत हसे 'एक सलाम जुल्फिया का, दूसरा फज के लफ्जो म, तीसरा एसे कासिद के हाथ, मेरा हाल क्या होगा ?'

शहर स बीस मील दूर पहाड के दामन मे एक नदी के किनारे लेखक गृह बन

१ रेशम बुनने वाली दोशीजा !
मई का महीना तेरी लाखो मुरादें पूरी करने के लिए आया है।
सपन बुनने वाली सुन्दरी !
अपनी डलिया म मेरी लाखो दुआए रख लो !

हुए हैं। इस नदी का नाम है 'वरज-आब' (नाचता हुआ पानी)। यहा आज ताजिक लेखको ने मुझे रात के खाने की दावत दी। अमन के, दोस्ती के, और कलमा की अमीरी के नाम जाम भरते हुए और 'टोस्ट' देते हुए—सबने बारी बारी बहुत प्यारी कविताए पढी। फिर अचानक नन्ही नन्ही बूदें बरसने लगी तो मिर्जा तुसनजादे ने कहा आज हमने मिटटी म दो देशो की दोस्ती का बीज बोया है सो आसमान पानी देने आया है '

एक कवि ने पूछा— आपके देश म, सुना है, एक आशिको का दरिया है, उसका नाम क्या है ?'

मैंने बताया, 'चिनाब' और कहा— आपके देश म वरज आब ! सो देख लीजिए हमारे दरियाओ का काफिया भी मिलता है '

अजरबजान की राजधानी बाकू म भी बडे अच्छे लोग मिले विशेषकर वहा की लेखिकाए निगार खानम और लगभग पचीस पुस्तको की लेखिका मिखारद खानम दिलबाजी और ईरानी कवयित्री मदीना गुलगुन। उन तीनो म मैं चौथी एक सहेली की भाति हिल मिल गयी तो अपनी कविताए पढते हुए हमने दूर *उज़्बेकिस्तान मे बठी जुल्फिया को भी याद किया। उसकी एक कविता पढी,* तो वहा के विख्यात कवि रसूल रज़ा ने जो टोस्ट पेश किया, वह अभी तक मेरी डायरी मे लिखा हुआ है—'यह तो पाच शायर औरतें मिल गयी हैं पाच पानियो की तरह और यहा अजरबजान की राजधानी बाकू मे पूरा पजाब बन गया। सो मैं पजाब की सलामती के जाम पीता हू

इसी महफिल म बारहवी शताब्दी की एक अजरी कवयित्री महसती गजवी का कलाम भी पढा गया, और तब मैंने इस महफिल को आठ शताब्दियो की महफिल कहकर कहा— कभी मैंने एक कविता लिखी थी मिल गयी थी इसम एक बूद तरे इश्क की इसलिए मैंने उम्र की सारी कडवाहट पी ली पर आज इस महफिल म बठे हुए मुझे लग रहा है कि मेरी उम्र के प्याले म इसानी प्यार की बहुत-सी बूदें मिल गयी हैं और उम्र का प्याला मीठा हो गया है।

सफर की डायरी

नगाजन से लेकर वोडका तक यह सफरनामा है मेरी प्यास का। इस मन के सफर का जिक्र करते हुए कई देशो के सफर का जिक्र भी उसम शामिल है। पर इन सुन्दर स्मतियो का आरभ जिस दिन हुआ था वह दिन मेरे उदास दिनो की एक

भयानक स्मृति है, जसे भोर होने से पहले रात और काली हो जाती है। उन दिना मैं दिल्ली रडियो म नौकरी करती थी। एक शाम दफ्तर के कमरे म बठी हुई थी कि सज्जाद जहीर मिलने आए। कुछ देर दुविधा म चुप रह, फिर सकोच भरे शब्दो म कहन लग, 'भारतीय लेखको का एक डेलीगेशन सोवियत रूस जा रहा है। मैं चाहता हू आप भी इस डेलीगेशन म हो। पर कल मीटिंग मे किसी भाषा के किसी लेखक न आपके नाम पर एतराज नहीं किया पर पजाबी लेखको ने सख्त एतराज किया है 'और उन्होने और भी सकोच भरे शब्दो म बताया, वे कहते हैं अगर अमता डेलीगेशन म होगी तो हमारी पत्नियां हम डेलीगेशन के साथ नहीं जान देंगी मैं अजीब मुश्किल म पड गया हू।'

इस घटना को मैंने बाद म 'दिल्ली की गलियां' उपन्यास म लिखा था। उसम सज्जाद जहीर का नाम राजनारायण लिखा था। और उस दिन जब सज्जाद जहीर ने अपनी यह मुश्किल बताकर कहा कि अगर मैं उनको कमेटी के नाम एक चिट्ठी लिख दू कि मैं डेलीगेशन मे जाना चाहती हू तो वह कमेटी की ऊपर के स्तर की मीटिंग म यह चिट्ठी रखकर मेरे जान का फसला कर लेंगे और तब मैंने उन्हें जवाब दिया था— आपने यू ही आने की तकलीफ की। आपने यह कम सोच लिया कि मैं किसी डेलीगेशन के साथ जाना चाहूगी। मैंने अपने मन म फसला किया हुआ है कि मैं जब भी किसी देश जाऊगी, अकेली जाऊगी। सोवियत रूस को अगर मेरी जरूरत होगी तो मुझे अकेली को बुलावा भेजेंगे, नहीं तो नहीं सही।'

१९६० म मास्को की राइटस यूनियन की ओर स मुझे अकेली को बुलावा आया और अप्रल, १९६१ म मैं ताशकद, ताजिकिस्तान, मास्को और अजरबजान गयी।

फिर १९६६ म बल्गारिया न मुझे अकेली का बुलावा दिया था, और मैं बल्गारिया और मास्को गयी थी।

उसी वर्ष के अत म जार्जिया क कवि शोता रुस्तावली का आठ सौ साला जश्न मनाया गया था, जिसके लिए मैं १९६६ म फिर मास्को जार्जिया और आर्मीनिया गयी थी—अकेली।

१९६७ म हमारी सरकार ने कल्चरल एक्सचेंज म मुझे यूगोस्लाविया, हगरी और रोमानिया भेजा था हर मुल्क म तीन-तीन हफ्ते के लिए। और वहा बल्गारिया न अपन खच पर मुझे अपन देश बुला लिया था और वस्ट जमनी न अपन खच पर अपन देश—और वापसी म तहरान न कुछ दिनो का बुलावा द दिया था।

१९६९ म नेपाल म अपनी इडियन एम्बेसी क निमत्रण पर वहा गयी थी। और १९७२ म यूगोस्लाविया की विशप माग पर हमारी भारतीय सरकार न

सरचरन एक्सचेंज के सिलसिले म मुझे फिर तीन देशो मे तीन-तीन हफ्ते के लिए भेजा था—यूगोस्लाविया चेकोस्लोवाकिया और फ्रास जहा से अपने खर्च पर मैं लदन और इटली भी गयी थी। वापसी पर ईजिप्ट ने काहिरा म एक हफ्ते का इनविटेशन दे दिया, सो लौटते समय वहा भी गयी।

और उसके बाद १९७३ म 'विश्व शाति काग्रेस' के अवसर पर मास्को गयी थी।

मुझे डायरी लिखन की आदत नही है लेकिन मैं सफर म जरूर लिखती हू। उन दिना की कई यादें मेरे सामने मेरी डायरी के पन्नो म अकित हैं

अजीब अकेलेपन का एहसास है। हवाई जहाज की खिडकी से बाहर देखते हुए लगता है जसे किसी न आसमान को फाडकर उसके दो भाग कर दिए हो। प्रतीत होता है—फटे हुए आसमान का एक भाग मैंने नीचे बिछा लिया है दूसरा अपने ऊपर ओढ लिया है मास्को पहुचने म अभी दो घटे बाकी हैं। पर खयालो के अकेलेपन से चलकर कही पहुचने म अभी मालूम नही कितना समय बाकी है

२४ मई १९६९

जहा तक दष्टि जाती है धरती पर बादलो के खेत उग हुए दिखाई देते हैं। किसी जगह कही-कही जस बादलो के बीज कम पडे हो पर किसी जगह इतने घने हैं मानो बादलो की खेती बडी भरकर हुई हो और इन खेतो पर स गुजरता हुआ हवाई जहाज बादलो की कटाई करता हुआ प्रतीत होता है। और ऐसा लगता है जस गहू के खेतो म घूमत हुए गहू का दाना मुह म डालकर कभी आदम बहिश्त स निकाला गया था उसी तरह बादलो के खेतो म चलते हुए इन खेतो की सुगध पीकर आज आदम धरती से निकाला गया है

सोफिया क हवाई अडडे पर बिलकुल अजनबी-सी खडी हू। अचानक किसी ने लाल फूलो का एक गुच्छा हाथ म पकडा दिया है और साथ ही पूछा है— आप अमता ? और मैं लाल फूलो की उगली पकड अजनबी चेहरो के शहर म चल दी हू

२५ मई १९६९

अभी बलगारिया के राष्ट्रीय नेता गओर्गी दिमीत्राफ को देखा है जिसकी रूह लोगो न अपनी रूह म बसा ली है और जिसका शरीर विज्ञान की सहायता से सभाल लिया गया है उन १९३३ म हिटलर ने बन्द कर लिया था। उस समय लेखको न ही उसे बचान की कोशिश की थी। फ्रास के रोम्या रोला न उसके लिए कलमी सघष आरम्भ किया था और उसन स्वतन्त्र होकर फिर १९४४ म बल्गारिया को फासिस्ट शासन स स्वतत्र करवा लिया था। आज लोग मुझसे

कह रहे हैं—'यह हमारा दिमीत्रोफ आपके गांधी जैसा है, आपके नेहरू '

२५, मई १९६६

अपने देश को जर्मन जुए से स्वतन्त्र कराने वाले बल्गारियन सिपाहियों के बुत देख रही हूं। तीन किलोमीटर लम्बे और इतने ही चौड़े घेरे में बना हुआ बुतों का यह बाग स्वतन्त्रता का बाग कहलाता है ये बुत गुलाम जिन्दगी की पीड़ाओं की और स्वतन्त्र जिन्दगी के इश्क की मुंह बोलती तसवीरें हैं

२६ मई, १९६६

आज दोपहर विदेशों से सांस्कृतिक संबंधों के विभाग के वाइस प्रेसिडेंट प्रोफेसर स्टेफान स्टंटशेव से बहुत दिलचस्प मुलाकात हुई। बड़े गम्भीर व्यक्ति हैं इसलिए प्रेस के सेंसर के बारे में मैं बातें कर सकी। कहा यह ठीक है कि लिखने-बोलने की स्वतन्त्रता में जब तक लिखने बोलने वाले को उत्तरदायित्व की पहचान नहीं होती, तब बहुत कुछ गलत भी अस्तित्व में आ जाता है। पर इसके दूसरे पक्ष के बारे में सोच रही हूं कि अगर लिखित उत्तरदायित्व पूर्ण हो, पर भिन्न विचारों और भिन्न दृष्टिकोण के कारण भिन्न प्रकार की हो, तो उसका क्या होगा ?'

उनका उत्तर भी संभला हुआ है—'हमारी संस्था दृष्टि को विशाल रखती है नये प्रयोगों को परवान करती है पर हो सकता है कि इसकी परिधि कुछ अच्छी कृतियों के लिए हानिकारक भी हो पर बीमार साहित्य के अस्तित्व में आने की अपेक्षा यह कम हानिकारक है '

जानती हूं समय ठहर नहीं सकता, प्रश्न भी ठहर नहीं सकता। यह समाजवादी व्यवस्था में भी रास्ता खोजेगा। आज की बातचीत का वातावरण खुशगवार है मिस्टर स्टंटशेव कह रहे हैं बुरे से श्रेष्ठ तक पहुंचे हैं श्रेष्ठतम तक भी पहुंचेंगे '

२७ मई १९६६

आज बल्गारियन लेखकों की महफिल में कविताएं पढ़ीं। अर्थों की तह में उतर जाने के लिए भाषा की मजबूरी का बन्द दरवाजा कभी बल्गारियन कभी रूसी और कभी फ्रेंच शब्द से खोला जा रहा था। वहां युगोस्लाविया से आए हुए मेहमान कवि ज्लात्को गोर्यान ने मेरी सबसे अधिक सहायता की। गोर्यान को फ्रेंच और जर्मन से अंग्रेजी में अनुवाद करने का बहुत अनुभव है इसलिए आज उन्होंने मुझ पर बहुत प्यारा-सा एहसान किया है—'मैं आपका सबसे अच्छा दोस्त हूं। आप युगोस्लाविया के इस दोस्त को याद रखियेगा। इसने आपकी कविताओं के अर्थ करने में बहुत मदद की है '

२९ मई १९६६

आज शाम बल्गारिया के महान लेखकों ईवान वाजोव, पीयो यावोरोव और

निकाला वापत्सारोव के ऐतिहासिक घरो को देखा। वापत्सारोव की कविताओ का पजाबी अनुवाद मैंने कई वर्ष हुए किया था। वह मेरी अनुवाद का हुई पजाबी पुस्तक भी उसके ऐतिहासिक घर म रखी हुई है। आज उसकी मेज को उसके कलम को उसकी चाय की केतली को हाथो स छुआ तो आखें भर भर आयी। लगा कई वर्ष पहले जब मैंने उसकी कविताओ का अनुवाद किया था तब से उसकी कई पक्तिया जो कानो म पडी थी और शायद कानो म ही अटक कर रह गयी थी वे आज कानो म सुलग उठी हैं—'कल यह ज़िन्दगी सयानी होगी यह विश्वास मेरे मन मे बठा है और जो इस विश्वास को लग सके वह गोली कहीं नही वह गोली कही नही य पक्तिया उसने १६४२ म फासिस्टो के हाथो कत्ल होने से कुछ समय पहले लिखी थी। लगा, उस विश्वास को जिसे सृष्टि के आरम्भ से गोली नही लग सकी आज हाथ से छूकर देख रही हू

२६ मई, १६६६

सोफिया से १६० किलोमीटर दूर बतक गाव म उस चच के सामने खडी हू, जहा १८७६ म तुक शासन की दासता से मुक्त होन क लिए जूझते हुए गाव के दो हजार मद औरता और बच्चा ने शरण लेकर अपनी रक्षा का यत्न किया था। वह कुआ देख रही हू जो चच के गिद घेरा पड जाने के कारण चच म घिरे हुए प्यास लोगो ने अपने नाखूनो स खोद-खोदकर पानी निकालने का प्रयत्न किया था। यह सब-के-सब १७ मई को दुश्मन के हाथो मारे गए दो हजार मनुष्यो की हड्डिया और खोपडिया शीशे के ढक्कनो के नीचे सभालकर रखी हुई दिखाई दे रही हैं। दीवारो मे हमारे पजाब के जलिया वाला बाग की दीवारो की भाति गोलियो के निशान पडे हुए हैं

३१ मई, १६६६

आज प्लोवदिव कस्बे मे वह प्रिंटिंग मशीन देखी जिस पर दासता क विरुद्ध साहित्य छपा करता था शासन की चोरी से। और वे बेडिया देखी जिनमे मनुष्य बाधे जा सकते थ पर समय नही

कालाफर कस्बे स गुजर रहे थ कि देखा मानो सारा कस्बा ही हाथो म फूल लिए एक स्थान पर इकट्ठा हो रहा हो। मालूम हुआ आज २ जून है। १८७६ म भी यही तरीख थी जब यहा का एक बहुत प्यारा कवि खरिस्तो बोतिफ कत्ल किया गया था। एक दिन वह कविता लिखते लिखते अपनी बीस दिन की बच्ची को चूमकर और हाथो म बन्दूक लेकर अपने देश की रक्षा के लिए विदा हो गया था। और जब कत्ल हुआ तब उसकी आयु सत्ताईस वष पाच महीने थी। उसक साथी उसक साथ मिलकर लडते और उसकी कविताए गाते गाते मारे गए मैंने आज रात को खरिस्तो बोतिफ की एक कविता का अनुवाद किया है

आज शाम को बहुत ज़ोर की वर्षा हुई। बाहर नहीं जा सकी, इसलिए होटल के कमरे में बैठकर बल्गारिया का एक प्रसिद्ध उपन्यास 'अण्डर द योक' पढ़ती रही। हैरान हुई कि उपन्यास की मुख्य नायिका का नाम राधा है। कई जगह राधिका भी लिखा हुआ है। रात को खाने के समय अपने दुभाषिए से हँसी-हँसी में कहती रही—'राधा बल्गारियन कैसे हो गयी? कृष्ण तो भारत का था—शायद कृष्ण से मिलने के लिए राधा बल्गारिया से ही गयी हो।'

१३ जून, १९६६

सवेरे एक अखबार के सम्पादक ने मेरी कविता का अनुवाद किया—

चांद-सूरज दो दवातें कलम ने डोबा लिया
हुक्मराना दोस्तो!
गोलियां बन्दूकें और ऐटम चलाने से पहले
यह खत पढ़ लीजिए
साइंसदानो दोस्तो!
गोलियां बन्दूकें और ऐटम बनाने से पहले
यह खत पढ़ लीजिये
सितारों के अक्षर और किरनों की भाषा
अगर पढ़नी नहीं आती
किसी आशिक अदीब से पढ़वा लेवो
अपनी किसी महबूब से पढ़वा लेवो

आज दोपहर को जब विदेशों से सांस्कृतिक सम्बन्धों के विभाग ने मुझे विदाई भोज दिया, वहां कुछ कवि भी थे। बल्गारिया की सबसे अधिक प्रसिद्ध कवयित्री एलिस्वेता बागरिआना भी, डोरा गाबे भी—और हमारी दोस्ती के जाम पेश किए गए। डोरा गाबे ने महिला कवि होने के नाते एक महिला प्रधानमन्त्री का मान करते हुए इन्दिरा गांधी के नाम पर 'टोस्ट' पेश किया, और तब मैंने मोरपंख की पत्रिका सौगात देते हुए अमन के नाम पर कहा—'यह रंगीन पंख हमारे देश के राष्ट्रीय पक्षी के हैं। हम सारी दुनिया में अमन चाहते हैं ताकि हमारा राष्ट्रीय पक्षी दुनिया के आंगन में नाच सके।'

१४ जून, १९६६

जैसे ही शाम पड़ती है मास्को यूनिवर्सिटी परी महल की तरह झिलमिलाने लगती है। उसके ठीक सामने खड़े होकर, और उस ऊंची जगह से नीचे बहते हुए मास्को दरिया की ओर देखें तो दरिया की बाहों में लिपटे हुए शहर की

जगमगाहट दिखाई देती है। एक सुदर वास्तविकता । युद्ध के खूनी दरियाओ को तर कर, और भूख के मरुस्थलों को चीरकर पायी हुई वास्तविकता।

२५ सितम्बर जार्जिया मे वहा के एक प्यारे कवि शोता रुस्तावली का आठ सौ साला जश्न मनाया जा रहा है। *समय के अधिकारियों ने जब उसे देश निकाला* दिया था, व क्या जानते थे कि समय के सागर मे मल-मल नहाकर, उसकी कहानी एक जल परी की तरह निकल आएगी

तब देश म उसका नाम लेना भी जुम बन गया था इसलिए लोगो ने उसकी रचनाओ को कठस्थ कर लिया। आज जार्जिया क उन दो व्यक्तियो का सम्मान किया गया है जिन्ह रुस्तावेली का समस्त काव्य मुह-जबानी याद है

तबलिसी की एक ऊची पहाडी पर एक जार्जियन औरत का बुत बना हुआ है जिसके एक हाथ म तलवार है और एक हाथ म अगूर के रस का प्याला— तलवार दुश्मनो के लिए और अगूर के रस का प्याला देश मित्रो की भेंट

आज मैंटेखी चच देखा जो छह शताब्दी तो चच रहा था पर अठारहवी शताब्दी मे आक्राताओ के हाथो बन्दीगह बन गया था। मक्सिम गोर्की न भी यहा कद काटी थी

तबलिसी से १६० किलोमीटर दूर बारजोभी वली की ओर जाते हुए रास्ते मे गोरी कस्बा भी आया। यहा स्टालिन का जन्म गह देखा।

विश्व के प्रत्येक देश से लेखक आए हुए हैं। बारजोभी की शाम लेखक मिलन के लिए रखी गयी है। प्रत्येक देश के लेखक ने आज से बेहतर जिन्दगी की आशा म कुछ शब्द कहे पर जब वियतनाम का कवि चे लिन विन उठा तो सब का मन भर आया। आज उसके शब्द थे— हमारी कविता लहू के दरिया पार कर रही है। आज यह केवल हथियारो की बात करती है ताकि कभी यह फूलो की बात कर सके। *हमारे सिपाही जब रणक्षेत्र म जाते हैं लोग कविताए लिखकर उनकी* जेबो म डाल देते हैं। हम उन जेबो की कुशल-कामना करते है जिनमे कविताए पडी हुई हैं। आज अगर हमने कविता को बचा लिया तो समझिए कि मनुष्य को बचा लिया

और अभी, मेरी आखें भर आयी हैं। वियतनाम के इस कवि ने मेरे पास आकर कहा है— आप हिन्दुस्तान से आयी हैं न ? आपका नाम अमता है ? मैं चकित हो गयी तो उसने बताया— वियतनाम स आते समय हमारे प्रसिद्ध कवि स्वन जियाओ ने मुझसे *कहा था कि अगर कोई औरत हिन्दुस्तान स आयी हुई* होगी तो उसका नाम अमता होगा उसे मेरी याद देना

मन म एक प्राथना उठ रही है—काश दुनिया की सारी सुदर कविताए मिल जाए और वियतनाम की रक्षा कर सकें

२७ सितम्बर १९६६

आज आर्मीनिया की राजधानी यिरेवान में उसकी पुरातन हस्तलिखित लिपियों का संग्रहालय देखा। ये लोग सदा विश्व के अनेक भागों में बिखरे रहे। यहा तमिल भाषा में लिखे उनके इतिहास के पन्ने भी सुरक्षित रखे हुए हैं जो कभी इन्होंने दक्षिण भारत मे बसन के समय लिखे थे

आज तेरहवीं शताब्दी का एक गिरजाघर देख रही थी जो एक पहाड़ को शिखर की ओर से काट-तराशकर बनाया गया है। देखा—ऊंचे चबूतरे पर से एक छोटी सी सीढ़ी पत्थरों की एक गुफा में जाती है। गुफा पर कुछ मोह आ गया, झिझकते हुए किसी से पूछा—'मैं इसके अन्दर जा सकती हूं?' वह स्थान जस मुझे अपनी ओर खींच रहा था पर स्वय ही मैंने झिझककर कहा—शायद नहीं क्योंकि देखा—लोग उस चबूतरे को होठों से चूम रहे थे सो सोचा—शायद उस पर पैर रखकर आगे नहीं जाया जा सकता। पर मुझे उत्तर मिला—'उस गुफा में एक आला है वहा दीया जलाकर हमारे लेखक, आक्रमणकारियों की चोरी से समय का इतिहास लिखते थे। आप इस चबूतरे को पार करके, जितनी देर चाहें गुफा में बैठ सकती हैं '

तबलिसी में बल्गेरिया के एक लेखक ने मुझसे पूछा था—'आपको कभी किसी विशेष देश के लोगों से विशेष साझेदारी लगती है?' तो मैंने उत्तर दिया था 'इस तरह मुझे किसी देश में कभी नहीं लगा, पर कई किताबों के कई पात्रों से लगने लगता है

आज यिरेवान के एक गिरजाघर की एक गुफा ने मेरे संग इस प्रकार अचानक मोह डाल लिया है तो सोच रही हू कि केवल किताबों के पात्र ही नहीं, कोई खान-खुदर भी ऐसे होते हैं जो अजनबी देशों में कुछ अपने लगने लगते हैं

२ अक्तूबर, १९६६

मास्को से कोई दो सौ किलोमीटर का लम्बा रास्ता वृक्षों मे लिपटा हुआ है। सुना हुआ था कि रूस के जंगलों का पतझड़ दर्शनीय होता है। आज देख रही हूं—पेड़ों के पत्ते सोने के चौड़े पत्तों के समान झूलते हुए लगते हैं। कई पेड़ों के तने बिलकुल सफेद हैं मानो चांदी के पेड़ों पर सोने के पत्ते उगे हुए हों

यास्नाया पोलियाना में आज टाल्स्टाय के घर में खड़ी थी उस कमरे में जहां उसने 'वार एण्ड पीस' उपन्यास लिखा था। उसके शयन कक्ष के पलंग के पास टॉल्स्टाय की एक सफेद कमीज टंगी हुई है। पलंग की पट्टी पर मैं एक हाथ रखे खड़ी थी कि दाहिने हाथ की खिड़की में से हल्की-सी हवा आयी और उस टंगी कमीज की बांह हिलकर मेरी बांह से छू गयी

एक पल के लिए जैसे समय की सूइयां पीछे लौट गयीं—१९६६ से १९१० पर आ गयीं और मैंने देखा—शरीर पर सफेद कमीज पहनकर वहां दीवार के

पास टारस्टाय खडे हुए हं

फिर लहू की हरकत ने शान्त होकर देखा, कमरे में कोई नहीं था, और बाएं हाथ की दीवार पर केवल एक सफेद कमीज टगी हुई थी

८ अक्तूबर, १९६६

'पोएट्री इज ए कन्ट्री विदाउट फ्रंटियर्ज' कहते हुए युगोस्लाविया वाले प्रति वर्ष अगस्त के अन्त में आखरिद झील से दसियों कोसों की दूरी पर सतरगा शहर में दरिया दरिम के किनारे पर कविता का मेला लगाते हैं। पहले दिन केवल मसिडानियन भाषा की कविताएं पढ़ी जाती हैं और दूसरी रात सारी युगोस्लाव भाषाओं और मेहमान भाषाओं के कवियों के लिए होती है। सब कवि दरिया के पुल पर खडे होकर कविताएं पढ़ते हैं और सुनने वाले दरिया के दोनों किनारों पर बैठकर सुनते हैं बहुत से नावों में बैठकर भी। जलती हुई मशालों की और बिजली की रोशनी दरिया में झिलमिलाती है, तो यह रात किसी परी-कथा के समान हो जाती है। अपनी-अपनी भाषाओं में कविताएं पढते हैं और उनके अनुवाद यहां के विख्यात अभिनेता पढ़ते हैं। जब किसी देश का कवि कविता-पाठ करता है तब उस देश का झंडा लहराया जाता है। आज यहां कविता पढ़ना मेरे जीवन का बहुत प्यारा अनुभव है यह सब तालियां हिन्दुस्तान के नाम पर हैं—कालिदास के देश के लिए टैगोर के देश के लिए, नेहरू के देश के लिए "

२६ अगस्त १९६७

कल आखरिद से स्कोपिया पहुंचने के लिए जिस कार का प्रबन्ध किया गया था उसमें इथियोपिया का एक कवि अबरा जवेरी भी था और इथियोपिया का प्रिंस महत्तेमा सेलासी भी। हम अधिकांश रास्ता सतरगा में हुए कविता के मेले की बातें करते रहे पर एक जगह रुककर बीअर का एक एक गिलास पीते हुए इथियोपिया के प्रिंस का मन छलक उठा आप कवि लोग भाग्यशाली हैं वास्तविक संसार नहीं बसता तो कल्पना का संसार बसा लेते हैं मैं बीस बरस वायलिन बजाता रहा साज के तारों से मुझे इश्क है पर युद्ध के दिनों में मेरे दाहिने हाथ में गोली लग गयी थी अब मैं वायलिन नहीं बजा सकता संगीत मेरी छाती में जस जम गया है

इतिहास चुप है मैं भी कल से चुप हूं—संगीत के आशिक हाथों को गोलियां क्या लगती हैं इसका उत्तर किसी के पास नहीं है इस प्रश्न के सामने केवल खामोशी की बन्द गली है

३० अगस्त, १९६७

बेलग्रेड से कोई सौ मील दूर यूगोस्लाविया शहर के पहलू म खडे हुए दूर तक एक हरा निर्जन दिखाई देता है। इस निर्जन मे दो सफेद पख दिखाई देते हैं कोई अठारह गज लम्बे और जमीन से लगभग दस गज ऊच। तब १९४१ था, अक्तूबर महीने की २१ तारीख। एक स्कूल म कोई तीन सौ बच्चे अपना पाठ पढ रहे थे कि जमन फौजो ने स्कूल को घेर लिया और एक एक बच्चे को, मास्टरो के साथ, गोलियो स बीध दिया ये पत्थर के पख उस उडान के स्मारक है जो उन तीन सौ बच्चो की छाती म भरी हुई थी

उस दिन पूरे शहर की आबादी कत्ल हुई थी—सात हजार व्यक्ति। आज पत्थर के दो बुत, एक पुरुष का और एक स्त्री का, उन सात हजार कब्रो के स्मारक हैं।

यहा खडे हुए आज जो कुछ एक जीवित मनुष्य की छाती म गुजरता है वह या तो यह है कि उसकी जीवित छाती म स मास का एक टुकडा निकलकर इन बुतो म समा गया है और या इन बुतो म से निकलकर पत्थर का एक टुकडा सदा के लिए उसकी छाती मे उतर गया है

३१ अगस्त, १९६७

हगरियन कवि विहार बेला ने मिलते ही कहा, 'कोई भी आक्रमणकारी जब धरती के किसी भाग पर पाव रखता है तो सबस पहले वहा की पुस्तको की अलमारिया नापता है। पर जब कोई कवि किसी दर धरती के भाग पर पाव रखता है तो सबसे पहल पुस्तको की अलमारिया और बडी हो जाती हैं '

खुश आमदेद' के इन प्यारे शब्दो के बाद आज वह मशीन देखी जिस पर १८ मार्च १८४८ को सान्डोर पतोफी की लिखी हुई वह विद्रोहपूर्ण कविता छपी थी जो अब यहा का राष्ट्रीय गीत है।

आज यावाज कारोय से हुई भेंट भी बहुत स्मरणीय है। स्तालिन की मृत्यु तक इस कवि की कोई पुस्तक नहीं छप सकी थी। यह चार वष साइबेरिया म युद्ध-बन्दी रहा। १९४८ म रिहाई के समय इसकी जेबें टटोली गयी तो उनम स कविताए निकलीं, जिसके कारण उसे एक वष के लिए फिर जेल म डाल दिया गया

आज बुदापेस्ट रेडियो म बोलने के लिए और हगरियन लेखको की सभा म पढने के लिए मैंने अपनी कविताए चुनीं। खुश हू कि मुझसे केवल समाजवादी कविता पढने का आग्रह नहीं किया गया। वही कविताए चुनी गयी जो मैं चाहती थी। आज सान्डोर राकोश ने मेरी कविताए अनुवाद की हैं

लेखक यूनियन के कार्यालय म वहा के यशस्वी कवि गावोर गाराई से मिलते समय पास म उस कवि स अचानक भेंट हो गयी जो पिछले वष जार्जिया म मिला

था, और उसने मेरी डायरी म लिखा था—'अगर कभी मैं अगले वप तुमसे पेरिस मे मिल सकू ' पर आज उसन पहली बार मेरी कविताए पढी तो खुशी स बाल उठा, 'खुदा का शुक्र है कि यह कविताए कविताए हैं। मुझे डर था कि आप केवल समाजवादी कविताए लिखती हागी ' और इस बात पर कवल मैं ही नहीं बल्कि मेरे पास बठे हुए हगेरियन कवि भी खिलखिलाकर हसते रहे

एक कवयित्री कह रही है पूरे दस वप हमे खामोशी की एक लम्बी गुफा म से गुज़रना पडा। अब स्वीकृत माना से हटकर लिखी हुई कविताआ का छपना सभव हो गया है '

आज बुदापस्ट से १२० किलोमीटर दक्षिण की ओर बालातोन झील का वह किनारा देखा जहा ६ नवम्बर १६२६ को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आकर एक वक्ष का आरोपण किया था और एक कविता लिखी थी—

मैं जब इस धरती पर नही रहूगा
तब भी मेरा यह वक्ष
आपके बस त को नव पल्लव देगा
और अपने रास्ते जाते सैलानिया से कहेगा
कि एक कवि न इस धरती से प्यार किया था

वक्ष के निकट ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बुत है और बुत के निकट एक सफेद पत्थर पर व पक्तिया खुदी हुइ हैं और तारीख पडी हुइ है ८ नवम्बर १६२६।

वक्ष की एक टहनी से एक पत्ता तोडकर देखती हू ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी डडी पर आज की तारीख पडी हुई है—८ सितम्बर १६६७।

जिस कवि के नाम पर अब हगरी का सबस बडा पुरस्कार है आतिला योजेफ प्राइज़' उसकी कविताए अनूदित करत हुए मैं उस रेलवे लाइन पर गयी जहा उसने आज स तीस वप पहले आत्मघात किया था वह उस दौर म पदा हुआ जब व्यक्तिगत स्वतत्रता के गुनाह के लिए काई क्षमा नही थी

आतिला की कविताए बहुत प्यारी हैं—एक ही समय म उनमे ओज भी है और कोमलता भी। उसके अतिम दिना की एक कविता की दो पक्तिया हैं—

दूध के दाता स तूने चट्टाना को तोडना चाहा
मूख ! क्या सपने देखने के लिए कोई रात काफी नही थी

६ २२ सितम्बर १६६७

आज रोमानिया म वह गिरजाघर देखा जहा रूसी कवि पुश्किन की चाहने वाली ग्रीक युवती कालिप्सा की खोपडी रखी हुई है। रोमानिया का एक भाग ग्रीक लागों स बसा हुआ था और जब १८३२ म यहा तुक अधिकारियो के विरुद्ध विद्रोह हुआ तब यह लडकी भी विद्रोहिया म थी और जब इन लोगा ने रूस के

एक ऐसा कवियत्री थी। जिसके लिए दुनिया के गिरजा ... निराश होकर वापस लौट आयी। गिरजा में औरतों के रहने की मनाही थी, इसलिए वह एक पुरुष साधु के वेश में गिरजा के अन्दर रहने लगी। कहते हैं यह केवल उसकी मृत्यु के समय ज्ञात हुआ कि वह स्त्री थी। १८४० में उसने अपने जीवन को अपने हाथों समाप्त करने के समय एक पत्र लिखा, और तकिये के पास रख दिया।

गिरजाघर की गुफा में खड़ी हूं। कानों में एक खड़का-सा सुनाई देता है। न जाने बाहर पतझड़ी हवा से चूनते हुए वृक्षों के पत्तों का यह खड़का है या समय के आंचल में पड़ा हुआ कालिप्सो का पत्र हिल रहा है।

९ अक्तूबर, १९६७

आज मेहनत करने की अपनी आदत काम आयी। जिस देश में भी जाती हूं वहां की कम से कम दस श्रेष्ठ कविताएं और कुछ कहानियां अवश्य अनुवाद करती हूं। इसलिए उन देशों के लेखकों के संबंध में मुझे कुछ जानकारी हो जाती है। कल रोमानिया से बल्गारिया पहुंची तो मालूम हुआ कि आजकल हमारी प्रधानमंत्री बल्गारिया आयी हुई हैं। आज उनकी ओर से देश के प्रेसिडेंट को चाय की दावत थी। वहां इन्दिराजी ने अलग कमरे में बुलाकर जब मेरा प्रेसिडेंट से परिचय कराया तो बल्गारियन साहित्य के संबंध में मैं इतनी बातें कर सकी कि वह भी हैरान थे कि मुझे उनके देश की इतनी जानकारी कैसे है।

१५ अक्तूबर, १९६७

२१ अक्तूबर को यूगोस्लाविया के जिस शहर क्रागुयेवाच में जर्मन फौजों ने सात हजार व्यक्ति एक ही दिन में कत्ल किये थे, उसके नागरिकों का बुलावा था कि अक्तूबर में मैं फिर वहां आऊं और उस दिन उस भयानक कांड के बारे में लिखी हुई डीसांका मकसीमोविच की कविता का पंजाबी अनुवाद पढ़ूं। पर देश देश घूमते हुए ढाई महीने हो गए हैं और इस निमंत्रण को किसी और वर्ष पर उठा कर मैं जर्मनी आ गयी हूं। विचित्र संयोग है कि आज वही तारीख है— २१ अक्तूबर। मन में एक बेचैनी-सी हुई कि जहां इतने व्यक्ति क़त्ल किए गए, मैं वहां जाने के बजाय वहां आ गयी हूं जहां की फौजों ने उन्हें क़त्ल किया था।

पर आज फ्रैंकफर्ट में यहां के प्रसिद्ध लेखक हाइनरिश बाउल को जर्मनी का गउग वउश्नर पुरस्कार मिलना था और मुझे इस संस्था की ओर से निमन्त्रण था, इसलिए एयरपोर्ट से सीधी वहां चली गयी। वहां हाइनरिश बाउल की जवाबी तक़रीर सुनी तो मन को कुछ चैन आया। उन्होंने कहा, 'यहां आप लोग मुझे

मानव भावनाओ का अनुसरण करने के लिए सम्मानित कर रहे हैं पर यह सम्मान स्वीकार करते हुए मुझे खुशी नही है—यहा स कुछ दूर वियतनाम पर बम गिर रहे हैं और मैं कुछ नही कर सकता हू '

फ्रैंकफट मे गटे का घर देखा और स्टुटगाट म शिलर का यहा के एक दाशनिक न कहा था 'जिस भाषा के लोगा न ससार म इतनी जन हत्या करवा दी है उस भाषा मे अब कोई कविता या कहानी नही लिखी जा सकती।' पर सोच रही हू यह धरती दाशनिका की होती थी और आज भी जहा दु ख की यह अनुभूति है, यह चेतनता उस भाषा म कुछ भी रचा जा सकता है

२६ अक्तूबर, १९६७

आज म्यूनिख म हू—जहा हिटलर की ट्रायल हुई थी। शहर के बीस मील दूर एक कासेंट्रेशन कम्प देखने गयी तो वहा एक जमन लडकी न जिसकी आखें भर आयी थीं अचानक मेरी बाह पकडकर पूछा, आपका क्या ख्याल है, हमारे लोगा ने यह जो कुछ किया था कभी हम इसका फल भुगतना पडेगा ? "

आज यह वही देश है जिसके इस शहर म बडे बडे पोस्टर लगे हुए देख रही हू जिन पर लिखा हुआ है—' जो भी व्यक्ति वियतनाम म अमरीका की वतमान नीति का समथक है उसकी हत्यारा म गणना है '

२८ अक्तूबर १९६७

आज दूसरी बार यूगोस्लाविया आना और सतरुगा म उसके विश्व कवि सम्मेलन म भाग लेना मेरे जीवन का एक और बहुत स्मरणीय दिन है।

बहुत सारे लेखका के इटरव्यू लिये गए हैं और मुझसे पूछे गए प्रश्ना म एक प्रश्न यह था कि मेरे अनुसार स्वतत्रता के क्या अथ हैं। उत्तर दिया वह व्यवस्था जो आम साधारण व्यक्तिया को भी जीवन का अथ दे पर जिसम किसी का व्यक्तित्व न खो जाए '

आज एक ऐतिहासिक गिरजाघर को काव्य मच बनाकर पाब्लो नरुदा की कविताओ की सध्या मनाई गयी

२५ ३० अगस्त १९७२

वापसी पर मसीडोनिया की राजधानी स्कोपिया म एक लोकगीत सुना, जिसम भारत स लौटे हुए सिकन्दर की उस कुर्सी का उल्लख है जो चन्दन की लकडी की बनी हुई थी। स्पष्ट है यह गीत यहा ग्रीस से आया होगा। मेरे पास चन्दन की लकडी की कुछ पेंसिलें थी जो मैंने यहा के लेखका को सौगात के तौर पर दी तो वे पूछने लगे क्या आपके देश म भी सिकन्दर के बारे म लोकगीत

है ?" उत्तर दिया, 'हमारे देश में तो वह आनाथर था। क्या वह, क्या तुर्क, क्या मुगल हमारे लोकगीतों में इनके बड़े उदास वर्णन मिलते हैं '

यहां से याद आया कि समरकंद में मैंने भी ऐसी ही बात वहां के लोगों से पूछी थी कि आपका इज्जत बेग जब हमारे देश आया और उसने एक सुंदर कुम्हारन से प्रेम किया तो हमने उसके बारे में कई प्रकार के गीत लिखे। क्या आपके देश में भी उसके गीत हैं"—तो वहां की एक प्यारी-सी औरत ने जवाब दिया, 'हमारे देश में तो वह बस एक अमीर सौदागर का बेटा था, और कुछ नहीं। प्रेमी तो वह आपके देश जाकर बना, सो गीत आपको ही लिखने थे, हम क्या लिखते '

किन देशों के लोग किन देशों में जाकर गीतों का विषय बन जाते हैं और अपने व्यक्तित्व का कौन-सा भाग वहां छोड़ आते हैं—बड़ा मनोरंजक इतिहास है। मेरी कहानियों में भी पंजाबी के बाहर के अनेक पात्र हैं जो मिले और कहानियां लिखवा गए। जी करता है किसी दिन मैं इन कहानियों को इकट्ठा करके इनका एक संग्रह प्रकाशित करूं

३१ अगस्त १९७२

आज मोटीनीग्रो में पुश्किन का चित्र देखा। पता हुआ पुश्किन जब सोलह वर्ष का था, जिप्सियों की एक टोली में मिलकर यहां आया था। पर धरती के इस टुकड़े ने उसको मन ऐसा मोह लिया कि वह पांच वर्ष यहीं रहा। यह चित्र दिखाते हुए वहां के डायरेक्टर ने मुझसे पूछा 'पुश्किन यहां पांच वर्ष रहा था, अमृताजी ! आप कितने समय रहेंगी ?"—तो मैं हंस पड़ी, कहा सिर्फ बीस दिन। मेरा जिप्सी इंस्टिंक्ट सिर्फ बीस दिन के लिए है

५ सितम्बर, १९७२

आज यूगोस्लाविया के परिशतिना शहर ने मेरी कविताओं की शाम मनायी। थियेटर के हॉल के बाहर भी और अन्दर भी भारत का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा। कई भारतीय चित्रों से दीवारों को सजाया और भारतीय संगीत बजाकर यह शाम शुरू की। मेरी यूगोस्लाव दोस्त इलियाना थूरा ने लाल रेशम की साड़ी पहनी और स्टेज पर जाकर मेरा परिचय दिया। हर कविता मैं पहले अपनी भाषा में पढ़ती फिर वहां के फिल्म अभिनेता बारी-बारी उसका अनुवाद सब और अल्बानियन भाषाओं में पढ़ते।

यहां संयोग से एक अमरीकन कवि हर्बर्ट कूनर भी मौजूद थे जिन्हें वह इस शाम में सीधे निमंत्रित नहीं कर सकते थे। पर परिशतिना की एक प्रथा है कि मुख्य अतिथि निजी तौर पर किसी मेहमान को बुला सकता है। सो, मैंने स्टेज

पर खडे होकर हवट कूनर से कविता पढने के लिए निवेदन किया। समारोह के अन्त म दो छोटी भारतीय फिल्मे दिखायी गयी—एक खजुराहो के बारे मे, और दूसरी भारतीय जीवन के कुछ पहलुओ के बार म आन द मूव।

इस स ध्या न आज मेरे मन को धरती के प्यारे लागा के एहसास से भर दिया है

७ सितम्बर, १६७२

यू तो हर दश एक कविता के समान होता है जिसके कुछ अक्षर सुनहरी रग के हो जाते हैं और उसका मान बन जाते हैं कुछ अक्षर लाल सुख हो जाते है उनकी अपनी या पराया की ब दूका स लहूलुहान होकर और कुछ अक्षर उसकी हरियाली की भाति सदा हरे रहते हैं जिसमे स उसके भविष्य के कोमल पत्ते नि य उगते हैं और इस प्रकार हर देश एक अधूरी कविता के समान होता है। पर इटली की धरती का स्पश किया तो लगा कि जस एक कविता के पूरे या अधूर होने की क्रिया को बहुत प्रत्यक्ष देख रही हू इस धरती के चप्प चप्पे पर सगमरमर के बुत ऐस प्रतीत होत हैं जस इस धरती म ही बुत उगत हा। लगा कविता के जा अक्षर कानो मे पडे वे सगमरमर बन गए, और जा अक्षर धरती म बीज के समान पड गए वे माइकल एजेलो के और अ य कलाकारो क हाथ बनकर धरती म से उग आए। और इन दूध जसे सफेद अक्षरा के इतिहास के साथ-साथ रक्तरजित अक्षरो का इतिहास भी बहुत लम्बा है जब स्पार्टिकस जसे हजारा गुलाम रोमन शासका के मनोरजन के लिए एक दूसरे की जान स खेलते थे

और इस कविता के अक्षर पीले भी है—भयभीत—पोप के वटीकन शहर की ऊची दीवारो से टकराते और गुच्छा सा होकर स्वय ही अपने अगा म सिमट जात हैं। इटली की धरती होनी की धरती है—जहा अनेक अक्षर उसके हर जगला की भाति भविष्य की नवीन कोपलें भी बन गए हैं—और कई अक्षर स दा के लिए खो गए हैं—शायद पहली बार तब खोए थे जब डिवाइन कमिडी वाला डाटे देश निष्कासित हुआ था और उसके साथ वह भी निष्कासित हो गये थे

और इस कविता के अक्षर कुछ वे भी हैं जि ह कोई सलानी नही पढ सकता—यह केवल लियोनार्दो दा विंची की मोनालीजा की भाति मुसकराते हैं—रहस्यपूण मुसकान

१० १६ नवम्बर १६७२

काहिरा आना मर लिए एक विलक्षण अनुभव है। एक ऐसी रेखा पर खडी हू जिसके एक आर काहिरा की हरियाली है और दूसरी ओर एकदम रेगिस्तान।

रेगिस्तान म बसने वाले वे पिरामिड हैं जिन्होंने पाच हजार वष के सूरज देखे हैं एक अरबी कहावत सामने खडी हुई दिखाई देती है—'दुनिया समय से डरती है, समय पिरामिड से '

१७ नवम्बर, १९७२

पाच सौ वष की यात्रा

आज एक और पल मेरे सामने खडा मुसकरा रहा है—

१९६९ क शुरू के दिनो की एक रात थी, रात का दूसरा पहर। टलीफान की घटी बजी। मेरे बेटे की ट्रककाल थी, बडौदा यूनिवर्सिटी के होस्टल से। मेरे चिन्ता भरे पत्रो क उत्तर म उसकी आवाज थी— मैं बिलकुल ठीक हू मामा !'

बहुत दिना बाद सुनी उसकी आवाज मेरे कानों से होकर मेरे रोम रोम म उतर गयी।

गर्मी हो या सर्दी, मैं बहुत स कपडे पहनकर नही सो सकती। सो रही थी जब यह फोन आया था। उसी तरह रजाई मे निकलकर फोन तक आयी थी— लगा, शरीर का मास पिघलकर रूह म मिल गया है और मैं प्योर-नकिड सोल वहा खडी हू।

अधेरे म जस बिजली चमक जाती है—खयाल आया मैं एक साधारण मा अपने साधारण बच्चे की आवाज सुनकर, अगर इस तरह एक हसीन पल जी सकती हू तो माता तृप्ता की कोख म जिस समय गुरु नानक जैसा बच्चा पल रहा था, माता तृप्ता को कसा नर्सगिक अनुभव हुआ होगा ?

यह वष गुरु नानक के पच शताब्दी उत्सव का वष था। मुझे एक प्रकाशक की ओर स एक लम्बा काव्य लिखन के लिए कहा गया था पर मैंने मना कर दिया था। लिखनी, तो वह काव्य मेरे लहू के उबाल म स उठा हुआ न होता।

पर अब यह पल जैसे मेरा हाथ पकडकर मुझे पाच सौ वर्षों के अधेरे म से ल जाकर, उस मा के पास ले गया जिसकी कोख म गुरु नानक था।

सारा अधेरा एक मद्धिम-सी लौ म भीग गया। रोशनी स गीला यह पल और फिर न जान कितने दिन और कितनी राता म उसकी महक बस गयी। इन्हीं दिना में मैंने एक ग्रीक कहावत को जिया था—आल वुड कैन बी मेड इन टू ए सॉग—और कविता लिखी—'गभवती'। माता तृप्ता के गभ के नौ महीने जस उसके नौ सपने थ।

फिर पजाब के कुछ अखबारो ने बुरा भला कहा, और इस कविता को 'बन' कर दने के लिए पजाब सरकार से आग्रह किया। वह सब सुना। 'अजीत दनिक' पत्र म किसी किरपाल सिह कसल के लेखा ने मुझे कामुक चीटी' कहकर यहा तक लिखा कि पवित्र गुरु नानक पर मुझे कविता लिखने का अधिकार नही था।

पजाबी साहित्य की बुजुग आवाजें चुप थी। उनकी जिम्मेदारी शायद चुप रहना ही थी।

पर मैं अकेली नही खडी थी यह हसीन पल मेरे साथ खडा था। हम दोना हैरान थे पर उदास नही।

देखा—गुरु नानक नाम को बहुत सारे हाथो ने लाठी की तरह पकडा हुआ था, और गुस्से से बाह फनायी हुई थी। वह लाठी मेरे चोट मार सकती थी पर इससे ज्यादा कुछ नही कर सकती थी। पर इस पल ने अपने हिस्से की लकडी का गढकर उसका क्रॉस बना लिया था।

और यह पल जिसे क्रास नसीब हुआ था आज मेरे सामने क्राइस्ट का तरह मुसकरा रहा है

एक दोस्ती की मौत

दोस्ती ने मरना सी सो मर गई
त दोस्ता !
हुण ऐमदी निंदिआ या उसतत
तू करी जा ओ जीअ औंदा है !
हुण ऐस दा कफन
इक मलो दरी दा होवे या जरी दा
की फरक पदा है !
मैं ऐम दी विथिआ सुणा ?
नही एह किआमत दा दिन नही
कि इस दी लाश कबर चा उठे[1]

यह कविता १९७१ म माच के अन्तिम सप्ताह म लिखी थी। एक दोस्ती थी जा १९६६ म जन्मी थी विशुद्ध साहित्यिक मानो मूल्या की जिसकी एक

१ दास्ती को मरना था सा मर गयी
और दोस्त ?
अब इसकी निन्दा या अस्तुति ?
तू किय जा जा जी म आता है।

वठक म 'नागमणि'[1] की रूपरेखा बनी थी, यह जब हाट फेल जैसे एक झटके स एक ही पल म १६७० के अंत म मर गयी, तो इसकी मत्यु के चार महीने बाद यह कविता लिखी थी। यह कविता जसे उस कब्र पर पायी जान वाली मिट्टी का अंतिम ढेला थी।

और फिर उस दोस्ती का जिक्र सदा के लिए खत्म हो गया।

पर आज सचमुच कयामत का दिन है दूसरी कब्रों के साथ उसकी कब्र भी खुल गयी है। जन्म और मत्यु एक यूनानी गीत के अनुसार एक ही मुख से कहे हुए दो शब्द होते हैं हैलो, फेयरवैल। सो, एक ही अस्तित्व के दो पल, एक जन्म का, एक मत्यु का, एक ही कब्र म दफन थे और आज दोना मेरे सामने खड़े हैं

कसी आश्चयजनक बात ये पल जब पहले देखे थे, तो जन्म का पल कितना हषयुक्त देखा था, और मत्यु का पल कितना उदास। पर आज जन्म का पल उदास है, और मत्यु का पल हषमग्न।

मैंने तुम्हें भ्रम म डाला था इसलिए उदास हू' एक पल जैसे कह रहा है और दूसरा पल भी सच की इस वेला म कह रहा है— मैंने तुम्हारा भ्रम उतार दिया इसलिए सुखरू हू खुश हू।'

यह पजाबी के एक नय उभरते हुए, कवि की दोस्ती थी। सोचती हू हैरानी किसी न किसी रूप म बनी रहती है। मन की मिट्टी पर कभी पानी गिर जाए तो यह मिट्टी स उठन वाली गध के समान भी होती है, और जब सूखा पड जाए तो मिट्टी स उडन वाली धल के समान भी होती है।

तब तक जब तक मनुष्य पत्थर न हो जाए। मैं पत्थर नही हुई क्योंकि अभी तक मुझ म हैरान होने वाली हालत बाकी है।

उसे—परदेस से स्कॉलरशिप दिलवाकर जब भेजा था तो जो मुख देखा था वह फिर चार वष बाद उसकी वापसी पर नज़र नही आया। बहुत परिचित चेहरे किस रास्त को पार करके बहुत अजनबी बन जाते हैं लगा था कि मैंने उसक चेहरे पर वह रास्ता देख लिया।

अब इसका कफन
एक मनी दरी का हो या जरी का
क्या फक पडता है।
मैं इसकी व्यथा सुनू?
नहा यह कयामत का दिन नही कि इसकी लाश कब्र से उठे

[1] एक पजाबी मासिक पत्रिका जो मेरे सपादन म मई, १६६६ से प्रकाशित हो रही है।

मेरे अंतिम शब्द थे— दोस्त! मेरी ज़िन्दगी में यह बहुत ही कठिन दिन है। यह उसी तरह है जैसे मेरा अपना बच्चा या इमरोज़ जैसा दोस्त परदेस से आया हो और थोड़े से पैसों की खातिर मेरे सामने झूठ बोल रहा हो, और मैं हैरान की हैरान रह जाऊँ 'हाँ एक शब्द था— ऐम्मी' मेरा नाम जिससे मुझे सिर्फ सज्जाद पुकारता था। जब तक उसके खत आते रहे यह नाम सीमाओं को चीर कर भी मेरे कानों तक पहुँचता रहा। पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के तनाव के समय जब खतों का सिलसिला नहीं रहा मेरे कान इस आवाज़ से वंचित हो गए।

इमरोज़ से कहा करती थी—वह मुझे इस नाम से पुकारा करे पर यह नाम कभी भी उसके मुँह पर नहीं चढ़ा। जब १९६७ में मैं ईस्ट यूरोप गई वहाँ वह हंगरी में भी मिला था रोमानिया में भी और फिर बलगारिया में भी। एक शाम बातें कर रहे थे सज्जाद का ज़िक्र आया और मेरे इस नाम का भी और उसने मुझसे इस नाम से पुकारने का अधिकार माँग लिया। उसके बाद वह मुझे इसी नाम से पुकारता रहा था। पर जिस दिन वह अजनबी बना वह यह नाम भूल गया स्वाभाविक भी यही था।

सो उसके जाने के बाद धरती पर गिरा हुआ अपना यह नाम उठाकर मैंने मेज़ के उस खाने में रख दिया जहाँ सज्जाद के पुराने खत पड़े हुए हैं।

अब आज क़यामत के दिन यही शुक्र है कि इस दोस्ती के जन्म का पल अपने सच्चे रूप में उदास है और उसकी मृत्यु का पल उदास नहीं है।

सच के बीज

मार्च १९७२ में जब हिन्दी समालोचक नामवरसिंह को साहित्य अकादेमी का अवार्ड मिला उन्होंने पाँच मिनट के एक भाषण में कहा कि आलोचना का कृत्य मैंने इसलिए चुना कि घर में कुछ सजाने से पहले इसकी मिट्टी धूल झाड़ लूँ।

यह आलोचना की अच्छी व्याख्या है पर एकांगी है और मैं कितनी ही देर सोचती रही—इसका दूसरा पहलू जिसने पल पल देखा और भुगता है कोई उससे इसकी व्याख्या पूछे। अगर साहित्य एक घर है और इसकी मिट्टी धूल झाड़ना आलोचना तो क्या अपने अन्दर की मिट्टी दूसरों की दहलीज़ों में झोंकनेवाला रुचि या झाड़ पोंछ की आड़ में वस्तुओं की तोड़ फोड़ को भी आलोचना कहेंगे?

कुलवंतसिंह विर्क ज़िन्दगी में बहुत कम मिला है केवल कुछ बार ही। साहित्यिक क्षेत्र की किसी समस्या पर उसने कभी गंभीरता से विचार नहीं किया

कम स कम मेरे सामन नही। पर कोई दो बरस बाद, जून १९७२ म एक बार वह शाम क समय आ गया।

पत्थर के कोयला का धुआ, यू तो बरसो से चारों ओर के साहित्यिक वातावरण की हवा म था पर देश की आजादी के साथ जैस जैसे चर्चा के अवसर बढे नामो का सुना-सुनाया जाने लगा, वैसे वैस अवसरो को पान की खीचतान म यह पत्थर के कोयलो का धुआ बहुत गाढा होता गया। और फिर उसम से कृतिया की लाल ज्वाला निकलने की जगह अदावता की चिनगारिया उडने लगीं

कामों की किताबें भी जिनके अधिकार म थी—बदली जान लगी, और अनक पष्ठ आत्म श्रद्धा से भरे जाने लगे, और पर निदा से काले होन लगे

विक ने उदास मुह से यही बात छेडी, पर दुनिया की किसी जबान म ऐसा नही होता यह सिफ पजाबी मे

सोच रही थी, जिस तरह माता पिता का चुनाव अपने हाथ मे नही होता, उसी तरह बोली का भी। अगर यह कुछ किसी और जबान मे नही होता और सिर्फ पजाबी म होता है तो भुगतना पडेगा। कलम का कृत्य जिस दिन चुना था, उसी दिन यह सब कुछ भी चुना गया। न अब बोली का और चुनाव हो सकता है न उसस जो कुछ लगा लिपटा है उसका

विक कह रहा था तुमने अच्छा लिखा या बुरा, किसी का क्या बिगाडा '

मैं सदा यही सोचती थी—मेरी कविताओ या मेरी कहानियो ने अगर किसी का कुछ सवारा नही न सही। मैंने इसके लिए किसी मान्यता की कभी चाह नही की। अगर आयु के बरस गवाए हैं, तो अपनी आयु के, पर मेरे समकालीन इस तरह लाल पीले रहते हैं जसे उनकी उम्रें खो गयी हो

विक मेरे मन की वही बातें दोहरा रहा था। मैंने अपना और उसका मन ठिकाने लगाने के लिए उसे अपना नया उपन्यास दिखाया— अक्क दा बूटा' (हिन्दी म आक के पत्ते') । बताया—इस उपन्यास मे आक कडवे सत्य का प्रतीक है। और बताया—उपन्यास की एक लडकी उर्मि का जब उसके सगे सबधी कत्ल कर देत हैं कत्ल का खोज नही निकलता। उपन्यास का मुख्य पात्र लडकी का भाई पूछ पूछकर हार जाता है पर सबके चेहरा पर पीतापी के समान चुप छायी हुई है और दोनो गाव—उसका मायका और ससुराल—इस तरह चुप हैं जस दोनो को मिरगी पड गयी हो, तब उपन्यास का मुख्य पात्र सोचता है—मिरगी के रोगिया को जो नसवार सुघाते हैं वह आक के दूध से बनती है। मैं दोनो गावो को कडवे सत्य की नसवार सुघाऊगा

विक हसता है— तुमने आक के पौधे देखे होंगे तुम जानती हो यह कसे उगत हैं ?

इतना जानती हू इन्हें बीजता कोई नही पर य उगत हैं

मरे अंतिम शब्द थे— दोस्त ! मेरी ज़िन्दगी म यह बहुत ही कठिन दिन है। यह उसी तरह है जस मेरा अपना बच्चा या इमरोज़ जैसा दोस्त परदम स आया हो, और थाडे स पैसा की खातिर मेरे सामने झूठ बाल रहा हो और मैं हैरान की हैरान रह जाऊ ' हा, एक शब्द था— ऐम्मी मेरा नाम जिसम मुझे सिफ सज्जाद पुकारता था। जब तक उस के खत आते रहे यह नाम सीमाओं को चीर कर भी मेरे कानो तक पहुचता रहा। पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के तनाव के समय जब खतो का सिलसिला नही रहा मरे कान इस आवाज़ से वंचित हो गए।

इमरोज से कहा करती थी—वह मुझे इस नाम स पुकारा करे, पर यह नाम कभी भी उसके मुह पर नही चढ़ा। जब १६६७ मे मैं ईस्ट यूरोप गई वहा वह हगरी म भी मिला था रोमानिया म भी और फिर बल्गारिया मे भी। एक शाम बातें कर रहे थे, सज्जाद का ज़िक्र आया, और मेरे इस नाम का भी, और उसने मुझे इस नाम स पुकारन का अधिकार माग लिया। उसके बाद वह मुझे इसी नाम से पुकारता रहा था। पर जिस दिन वह अजनबी बना वह यह नाम भूल गया स्वाभाविक भी यही था।

सो उसके जाने के बाद धरती पर गिरा हुआ अपना यह नाम उठाकर मैंने मेज़ के उस खाने में रख दिया जहा सज्जाद क पुराने खत पड़े हुए हैं।

अब आज कयामत के दिन यही शुक्र है कि इस दोस्ती के जन्म का पल अपने सच्चे रूप म उदास है और उसकी मत्यु का पल उदास नही है।

सच के बीज

माच १६७२ म जब हिन्दी समालोचक नामवरसिंह को साहित्य अकादेमी का अवाड मिला उन्होने पाच मिनट के एक भाषण म कहा कि आलोचना का कृत्य मैंने इसलिए चुना कि घर म कुछ सजाने से पहले इसकी मिट्टी धूल झाड ल।

यह आलोचना की अच्छी व्याख्या है, पर एकागी है और मैं कितनी ही देर सोचती रही—इसका दूसरा पहलू जिसने पल पल देखा और भुगता है, कोई उससे इसकी व्याख्या पूछे। अगर साहित्य एक घर है और इसकी मिट्टी धूल झाडना आलोचना ता क्या अपन अन्दर की मिट्टी दूसरो की दहलीजो म झाकनेवाली रुचि या झाड पोछ की आड म वस्तुओ की तोड फोड को भी आलोचना कहग ?

कुलवतसिंह विर्क ज़िन्दगी मे बहुत कम मिला है केवल कुछ बार ही। साहित्यिक क्षत्र की किसी समस्या पर उसने कभी गभीरता से विचार नही किया

कम स कम मेर सामन नही। पर कोई दो बरस बाद जून १९७२ म एक बार वह शाम क समय आ गया।

पत्थर के कोयला का धुआ यू तो बरसा से चारा ओर के साहित्यिक वातावरण की हवा म था पर देश की आजादी के साथ जस जसे चर्चा के अवसर बन, नामा का सुना-सुनाया जान लगा, वसे वसे अवसरा को पान की खीचतान म यह पत्थर के कोयला का धुआ बहुत गाढा होता गया। और फिर उसम स कृतियों की लाल ज्वाला निकलने की जगह अदावता की चिनगारिया उडने लगी

कामों की किताबें भी जिनके अधिकार मे थी—बदली जाने लगी, और अनक पष्ठ आत्म श्रद्धा स भरे जाने लग, और पर निन्दा से काले होने लगे

विक ने उदास मुह से यही बात छेडी, 'पर दुनिया की किसी जबान म ऐसा नही होता यह सिफ पजाबी मे '

सोच रही थी, जिस तरह माता पिता का चुनाव अपन हाथ म नही होता, उसी तरह बोली का भी। अगर यह कुछ किसी और जबान म नही होता और सिफ पजाबी म होता है तो भुगतना पडेगा। कलम का कृत्य जिस दिन चुना था, उसी दिन यह सब कुछ भी चुना गया। न अब दोनी का और चुनाव हो सकता है न उसस जो कुछ लगा निपटा है, उसका

विक कह रहा था 'तुमन अच्छा लिखा या बुरा किसी का क्या बिगाडा '

मै सदा यही सोचती थी—मेरी कविताओ या मेरी कहानियो ने अगर किसी का कुछ सवारा नही न सही। मैंने इसक लिए किसी मान्यता की कभी चाह नही की। अगर आयु के बरस गवाए हैं तो अपनी आयु के, पर मरे समकालीन इस तरह लाल पीले रहत है जस उनकी उम्रें खो गयी हा

विक मेरे मन की वही बातें दोहरा रहा था। मैंने अपना और उसका मन टिकान लगाने के लिए उस अपना नया उपन्यास दिखाया— अक्क दा बूटा' (हिन्दी म आक के पत्ते)। बताया—इस उपन्यास म आक कडवे सत्य का प्रतीक है। और बताया—उपन्यास की एक लडकी उर्मि का जब उसके सगे सबधी कत्ल कर देते हैं कत्ल का खाज नही निकलता। उपन्यास का मुख्य पात्र, लडकी का भाई, पूछ पूछकर हार जाता है पर सबके चेहरो पर पीलापी के समान चुप छायी हुई है, और दाना गाव—उसका मायका और ससुराल—इस तरह चुप हैं जैस दोनो को मिरगी पड गयी हो, तब उपन्यास का मुख्य पात्र सोचता है—मिरगी के रोगिया का जा नसवार सुघाते हैं वह आक के दूध से बनती है। मैं दोनो गावो का कडवे सत्य की नसवार सुघाऊगा

विक हसता है— तुमने आक के पौधे देखे हागे, तुम जानती हो यह कस उगत हैं ?

'इतना जानती हू इन्हें बीजता कोई नहीं, पर य उगते हैं '

आक के रुई के गाले से जब उडते हैं हर गाले म एक बीज छिपा होता है। हर बीज के जस पख लग जात हा वह उन पखा क सहारे उडता हुआ जहा जहा भी जाकर गिरता है वही उग जाता है

कहा— यह तुमन बहुत सु दर बात कही है विक ' सच का भी कोई नहा बीजता। इसे परमात्मा की ओर स पख लग जाते है। फिर यह जहा जहा उडकर जाता है वहा वहा उग पडता है। नही तो—धरती वाले इस धरती पर सच की खेती कभी भी न करत।

मन को एक सुकून सा आ गया। विक चला गया। दूसर दिन सोवियत लिटरेचर का वह अक डाक म आया जो हिन्दू रूस साहित्य के बार म एक विशेष अक था उसम रूसी कवयित्री रिम्मा काजाकोवा का, रूसी भाषा म छपी मेरी कविताओ की पुस्तक के सबध म एक लेख था जिसकी अन्तिम पक्तिया थी— यह साहस का काम है कि कोई अपनी बहुमूल्य और पीडासिक्त अनुभूतिया औरा के साथ बटाए और इस तरह बहुता का हितचितक मित्र और बधु बन जाए। दूर पजाब की इस स्त्री को मैं विश्वास दिलाती हू कि यहा क हजारो हाथ उमसे हाथ मिलाने के लिए आगे बढे हुए हैं।

मैंने रिम्मा को नही देखा है। चार बार मास्को गयी पर उसस भेंट नही हो सकी। पर आज मेरी उदासी म उसके हाथ मेर हाथो के निकट हैं

आक क बीज पख लगाकर उडते हुए न जाने दुनिया म कहा-कहा जा पहुचत हैं।

लगा—परियो के पख केवल लोककथाओ म देखे थे, पर दद के बीज जब पख लगाकर उडते हैं व मैंने धरती पर भी देख लिय

एक चुप

जिम प्रकार के कवि दरबार (सम्मेलन) होते है—जानती हू मेरी कविता उनकी रौनक नही है। इसलिए उनम कभी भी मरी दिलचस्पी नही रही। पर पटियाला वाला प्राफसर प्रीतमसिहजी जिन दिना लुधियाना गवनमेंट कालेज के प्रिसिपल लगे हुए थे उन्हाने स्कूल बोड म एक सवाल उठाया था कि पाठ्यक्रमा की पुस्तका के सम्पादन जिनसे करवाए जाते हैं व सदा नान-लेखक होत हैं और पुस्तको से काई आर्थिक लाभ लखको को मिलने क स्थान पर लाभ उनको मिलता है जो सपादन करत हैं। उम वप उनकी यह आवाज कुछ सुनी

गयी—चाहे सपादन के लिए जितनी राशि उन्होंने प्रस्तावित की थी उसकी आधी से भी कम स्वीकार की गयी (पाच हजार के स्थान पर दो हजार)—पर उस वर्ष कुछ लेखकों से पुस्तकें के सपादन करवाए गए। और मेरे दिल म उनकी इस बात के लिए जो कद्र थी, उसी के कारण—जब उन्होंने मुझे कालेज की जुबली के अवसर पर लुधियाना बुलाया तो मैं उन्हें इनकार नहीं कर सकी। गयी। लौटने की जल्दी था इसलिए अगले दिन सवेरे के प्लेन स वापस आना था। प्रोफेसर प्रीतमसिंहजी एयरोड्रोम तक छोडने आए थे। वहा जब जहाज आया तो मालूम हुआ कि यह जहाज सिर्फ सवारियों के लिए नहीं होता, यह वास्तव म लुधियाना की मिलो का माल ढोने के लिए होता है। सारा जहाज गाठो स भरा होता है सिर्फ गिनती की कुछ सवारिया ही उसम बैठती हैं। प्रोफेसर प्रीतमसिंहजी हस पडे—'आज आपको गाठो के साथ सफर करना पडेगा। उस समय मैंने सहज स्वभाव उत्तर दिया था, 'सारी उम्र गाठो के साथ ही तो चलती रही हू मनुष्य ये ही कहा!'

किसी समय कितने सादे शब्दो मे कितने बडे सत्य पकड म आ जाते हैं—वे शब्द मुझे अनेक बार याद आते रहे हैं

१९७२ की उस सरकारी मीटिंग म भी—जो देश की पचीसवर्षीय स्वतत्रता के उत्सव की तैयारी के सिलसिले म बुलाई गयी थी, दो घटे की इस बहस के बाद कि मुशायरे और कवि दरबार किस ढग से किए जाए, मैंने केवल कुछ ही मिनट लिये थ और कहा था—कविताए नाटक सगीत जो चाहे सोचिए पर कुछेक बुनियादी बातो को सामने रखकर। एक यह कि पचीस वर्षों मे जो किया है और जो कर सकते थे इसका आत्म परीक्षण सामने रखिए—एक आइना सामने रखकर। दूसरी, साधारण लोगो के जीवन म व्यावहारिक परिवर्तन लाने वाली बातो को सामने रखकर। और तीसरी यह बात कह सकें कि हमारे राजनीतिक नेता अपने अन्दर कोई ऐसा परिवर्तन ले आए कि जिससे उनके प्रति लोगो म विश्वास उत्पन्न हो।

कमरा कवियो, साहित्यिको स भरा हुआ था, पर एक चुप फैल गयी

चुप ही तो फैली हुई है। राजनीति स कुछ कहने स पहले यह सब कुछ अपने साहित्यिक क्षेत्रो स कहने का हक बनता है—इसलिए पहले वही सामने आ जाते हैं।

याद आ रहा है—एक समकालीन की कहानियो की एक पुस्तक किसी कोर्स के लिए तैयार करनी थी। मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा मेरी एक कहानी की अनुमति के लिए। उत्तर दिया—'अनुमति भेज दूगी। केवल इतना बता दीजिए कि अगर यह पुस्तक कहीं कोर्स म लग गयी तो लेखको को कुछ पैसे मिलेंगे?' तो उस पत्र का उत्तर यह था—कि समकालीनजी ने मेरी कहानी ही पुस्तक से

निकाल दी।

और याद आ रहा है कि एक बार एक यूनिवर्सिटी के लिए कुछ पुस्तकें पास हुई। बोर्ड द्वारा स्वीकार हुई तो मालूम हुआ कि एक पुस्तक के सपादक महोदय ने किसी कवि से भी उसकी रचना का उपयोग करने के लिए उसकी अनुमति नही ली। कुछेक ने शिकायत की पर प्रकाशक से थोड़े से पैसे लेकर चुप हो गये। मेरी शिकायत एक सिद्धान्त के लिए थी कि किसी की कोई भी रचना उपयोग करने से पहले शिष्टाचार की यह माग है कि उससे अनुमति ली जाए। सो इस माग के आधार पर बोर्ड से फिर पूछा गया कि अगर अमृता प्रीतम की कविताए इस पुस्तक से निकाल दी जाए तो कोई अन्तर पड़ेगा?—बोर्ड का निर्णय यह हुआ कि कोई अन्तर नही पड़ेगा।

सोचती हू—ऐसे बोर्ड आज भी कुछ दोषपूर्ण हैं। यह दोष भी निकल जाएगा तो किसी दिन ऐसे बोर्ड यह निर्णय भी दे सकेंगे—'सब कवियो की कविताए निकाल दो जी! कोई अन्तर नही पड़ता।

हसकर रेडियो आन करती हू—अजीब सयोग है कोई अहमद नदीम कासमी की गजल गा रहा है—सुबह होते ही निकल जाते हैं बाजार में लाग गठरिया सिर पर उठाए हुए ईमानो की

काले बादलो के सुनहरी किनारे

काले बादलो को सुनहरी किनारिया भी लग जाती है—कभी हैरान आसमान के मुह की ओर देखती रह जाती हू।

एक दिन मन भर आया। एक अमरीकन उपन्यास का अनुवाद कर रही थी। कई शब्द ऐसे आए जो किसी डिक्शनरी में नही मिले। मेरी सहायता के लिए यू एस आई एस के हरबससिहजी ने मुझे एक डिक्शनरी भेजी, और इस सौगात के पहले पृष्ठ पर लिख भेजा—'टू अमृता प्रीतम विद आल द गुड वर्डस फ्राम दिस डिक्शनरी।'

मेरे समकालीन सदा डिक्शनरी के बुरे से बुरे शब्द चुनकर मेरे लिए प्रयोग करते हैं पर सारे अच्छे शब्द चुनकर मुझे देने का किसी को खयाल आ गया यह कैसे हो गया

बुरे शब्दो की कानो को आदत डाल ली हो तो इस जैसी एक पक्ति को देख कर भी कान चौंधिया जाते हैं

इसी तरह बगाल देश के सघर्ष के समय एक दिन एक सिपाही का फोन आया

था—फट से एक दिन के लिए दिल्ली आया हू मिलना चाहता हू' शाम के समय वह मिलने आया तो हिन्दुस्तान मे पनाह ले रही बगाली औरतो के सबध म बतात हुए कहन लगा—'बहुत सी बूढी औरतें हैं पर जवान भी हैं, उन्ह हम नावा म स उतारकर कम्पो मे पहुचाते हैं। मुझे सिफ यही बात कहनी थी कि जिसन आपके नाविल पढे हैं वह उन पराई औरतो क साथ आदर का सलूक करता है, उन पर बुरा हाथ नही डालता।' लगा आज तक जो कुछ लिखा था, ठिकान पड गया है। मर उपयास आलोचको की मजो तक न पहुचे न सही। ये उमस कही दूर, साधारण सिपाहियो के मन तक पहुच गए हैं

आज याद आ रहा है—सबसे पहली लडाई के समय, एक सिपाही ने जग पर जाने हुए अपनी कविताओ की हस्तलिखित लिपि मेरे नाम रजिस्ट्री करवाकर भज दी थी कि 'अगर मैं जीता रहा तो वापस आकर ले लूगा। अगर मर गया तो य कविताए कही छाप दीजियगा।' मैंने जिस कभी देखा नही था उसका कमा विश्वास जीत लिया था—आखें भर आयी थी

जून, १९७२ म नेपाल के एक उपयासकार धूसवा सायमी नेपाल एम्बेसी के कल्चरल कौंसिलर के पद पर दिल्ली आए तो मिलने आए। बताने लगे—मेरी डायरी म एक जगह लिखा हुआ है—व्हैन आयी रीड अमृता प्रीतम माइ एन्टी इण्डियन फीलिंग्ज आर वैनिश्ड।"[1]

कलम न अज्ज तोडिया गीता दा काफिया, एह एश्क मेरा पहुचिया अज्ज केहडे मुकाम ते।"[2] वह भी एक मुकाम था १९६० का जब यह कविता लिखी थी, और फिर—यह भी एक मुकाम है दूर-पार बसन वाल लोगो क प्यार का—जहा पहुचकर हैरान भी हू और उन राहो की शुक्रगुजार भी जो आखिर मुझे इस मुकाम पर ले आए हैं

धूप के टुकडे

देश के विभाजन से पहले तक मेरे पास एक चीज थी जिसे मैं सभाल-सभालकर रखती थी। यह साहिर की नजम 'ताजमहल' थी जो उसने फ्रेम कराकर

---

१ मैं जब अमृता प्रीतम की कोई रचना पढता हू तब मेरी भारत विरोधी भावनाए खत्म हो जाती हैं।

२ कलम न आज गीतो का काफिया तोड दिया आज मेरा इश्क किस मुकाम पर पहुचा है

मुझ दी थी। पर देश के विभाजन के बाद जो मेरे पास धीरे धीरे जुड़ा है—आज *अपनी अलमारी का अन्दर का खाना टटोलने लगी हू तो दबे हुए खजाने की* भाति प्रतीत हो रहा है

एक पत्ता है जो मैं टालस्टाय की कब्र पर से लायी थी और एक कागज का गोल टुकडा है जिसके एक ओर छपा हुआ है—एशियन राइटर्स कान्फ्रेंस और दूसरी ओर हाथ से लिखा हुआ है 'साहिर लुधियानवी'। यह कान्फ्रेंस के समय का बैज है जो कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक लेखक को मिला था। मैंने अपने नाम का बैज अपने कोट पर लगाया हुआ था और साहिर ने अपने नाम का अपने कोट पर। साहिर ने अपना बैज उतारकर मेरे कोट पर लगा दिया और मेरा बैज उतारकर अपने कोट पर लगा लिया—और आज वह कागज का टुकडा, टालस्टाय की कब्र से लाए हुए पत्ते के पास पडा हुआ मुझे ऐसे लग रहा है जैसे यह भी मैंने एक पत्ते की तरह अपने हाथ से अपनी कब्र पर से तोडा हो

पास ही वियतनाम की बनी हुई एक एश-ट्रे है जो अजरबैजान की राजधानी बाकू में वहा की कवयित्री मिखारद खानम ने मुझे दी थी यह कहकर कि जब तुम्हारे इलहाम का धुआ तुम्हारे सिगरेट के धुए से मिल जाए, तो मुझे याद करना

बरसों इस धुए में चेहरे उभरते रहे मिटते रहे। सिर्फ औरों के ही नहीं, अपना चेहरा भी। अपनी आखों के सामने अपना चेहरा भी—पिघलता और कापता हुआ—वास्तव में तब ही देखा है जब कोई कविता लिखी है।

याद है—मेरे पिताजी के पास एक बहुत सुन्दर पीतल की डिबिया थी जिसमें रेशमी कतरन की तह में रखा हुआ एक बहुत ही पतला सा चमडे का टुकडा था जो उन्होंने उस घराने से मागकर लिया था जिसका दावा था कि उनके पास पूर्वजों से मिली हुई गुरु गोबिन्दसिंहजी के परों की एक जूती थी जो अब चमडे का एक बडा सा टुकडा मात्र रह गयी थी। यह पतला सा छिलका उसी टुकडे में से उखडा हुआ एक टुकडा था। पिताजी जब भी अपनी मेज का वह खाना खोलते थे जिसमें पीतल की वह डिबिया रखी हुई थी तो अदब से भर जाया करते थे।

मालूम नहीं—किसके लिए किस चीज का स्पर्श अदब बन जाता है और कब और किस तरह ? यह नहीं जानती। केवल यह जानती हू कि हाथ ऊचा करके मैंने उस जगह को स्पर्श किया है जहा मानवीय सौन्दर्य दिव्य बन जाता है।

कब्र की बात कर रही थी—हर उस पल की कब्र—जिसमें मानवीय सौन्दर्य का दिव्य बनते हुए देखने वाली अवस्था सम्मिलित है।

इस अवस्था को हुंकारा देते हुए—इमरोज के पत्र पडे हुए हैं और कुछ पत्र सज्जाद के और चार पाच साहिर के। मेरे लिए मेरे दोनों बच्चों के पत्र भी इस

अवस्था का हिस्सा हैं।

और—इस कब्र को सजाने वाले कई फूल पत्ते हैं—कुछ पाठकों के पत्र और कुछ दूर दराज के लेखकों की दी हुई सौगातें—उज़बेक कवयित्री जुल्फिया का दी हुई रंगीन अतलस की कुछ कमीज़ें जार्जियन कवि इराकली आबाशीदज़े के दिए हुए वाइन-जार, और शोता रुस्तावेली की चित्र खचित अंगूठिया, बाकू के कवि रसूल रज़ा का दिया हुआ तसवीरी कालीन और गोर्की का काष्ठ चित्र बल्गारियन लेखिकाओं बागिरआना, डोरा गाबे, सतानका और कामेनोवा की सौगातें—इत्र मफलर, ब्रोच, नग जटित हार और एक बल्गारियन नाटकों की निर्देशिका यूलिया की अपनी माता से विरसे में मिली हुई चांदी की झालर का आधा टुकड़ा जो उसने यह कहकर दिया था—'आज मां का विरसा बांट लिया है, इसलिए अब हम बहनें हैं'—और बल्गारिया की बुत-तराश एंतोनिया की भेजी हुई वह तसवीर जो मेरा बुत बनाकर और उसकी तसवीर खिचवाकर उसने मुझे सौगात के तौर पर भेजी थी

लग रहा है—धूप के कितने ही टुकड़े मेरी अलमारी के अंधेरे में पड़े हुए हैं

यूगोस्लाविया की उपन्यासकार गरोज़दाना का भेजा हुआ सफेद रातों का संगीत रिकार्ड प्लेयर पर सुनती हूं तो उसमें वह जार्जियन संगीत भी मिश्रित हो जाता है जो इकराली की मुझ पर लिखी हुई कविता का संगीत बनाते हुए वहां के संगीतकार शालवा मशवेलिड्ज़ ने मेरे नाम अर्पित कर दिया था

जापान के एक लेखक मोरीमोटो का भेजा हुआ स्वेटर और चीन के एक लेखक की दी हुई चीनी पंखी मेरी ग्रीष्म और शरद ऋतुओं को कुछ कहते प्रतीत होते हैं और टैगोर की पीतल की मूर्ति जो मास्को में टैगोर दिवस पर मुझे मिली थी धीरे से मेरी एक किताब की ओर देखकर मुसकराती है जिसमें फैज़ ने एक दिन अपना एक शेर लिख दिया था—आ गयी फस्ले सुकूं चाक गरेबां वालो ! सिल गए हैं होंठ कोई ज़ख्म सिले न सिले

होंठों पर भी कई धन्यवाद है—उन दूर पार के दोस्तों के लिए जिन्होंने अपना समय व्यय किया मन व्यय किया और मेरी कई कविताओं और कहानियों को अपनी-अपनी भाषा के लोगों तक पहुंचाया

आइगोर सैरबरियाकोफ बहुत मेहरबान मित्र हैं, उन्होंने कई किताबों में से चुनकर एक पूरी किताब की कविताएं रूसी में उल्था की हैं। न्यूज़ीलैंड के चार्ल्स ब्रश ने अपनी हिन्दुस्तान-यात्रा के कई दिन मेरी कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद करने में बिताए। यूगोस्लाविया की एलियाना चूरा ने कई कविताओं का सर्ब में अनुवाद किया फिर अल्बेनियन में अनुवाद करवाकर पूरी किताब छपवाई और यूगोस्लाविया में अनेक बार मेरी कविताओं की साहित्यिक संध्या मनायी।

गरोजदाना ने कई कहानियाँ 'पिंजर' उपन्यास का संक्षिप्त रूपान्तर और यात्रा उपन्यास सब में अनुवाद किया। मारीमोटो ने जापानी में कई कविताओं का अनुवाद किया। जाज ग्रिफिथ ने संगीत में कविता की एक संध्या मनाते हुए मेरी कविताएँ पढ़ीं। मिशीगन के कार्लो कपालो ने अपनी पत्रिका का एक पूरा अंक मेरी कविताओं और कहानियों के हवाले कर दिया। खुशवन्त सिंह ने 'पिंजर' उपन्यास अनुवाद किया। महेन्द्र कुलश्रेष्ठ प्रीतीश नन्दी, सुरेश कोहली और मनमोहन सिंह ने कई कविताओं के अनुवाद किए और कृष्णा गोरोवारा ने पूरे तीन उपन्यासों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया।

ये सब धूप के टुकड़े मेरे आसमानों पर हैं

मेरे अपने देश में भी दूसरी भाषाओं वालों ने मुझे बहुत प्यार और मान दिया है। उर्दू वालों ने मेरी लगभग पन्द्रह पुस्तकें उर्दू में छापी हैं तीन कन्नड़ भाषा वालों ने, दो गुजराती वालों ने, दो मलयालम वालों ने, दो मराठी वालों ने और हिन्दी वालों ने तो सब-की-सब छापी हैं। बल्कि आर्थिक स्वतंत्रता मुझे हिन्दी भाषा से ही मिली है। चुनी हुई रचनाओं का एक वस्तु संग्रह मेरी अपनी भाषा में नहीं हिन्दी में है। हिन्दी में अनूदित कविताओं के संग्रह धूप का टुकड़ा के समय श्री सुमित्रानन्दन पन्त के शब्द पढ़कर सचमुच आँखें भर आयी थीं। उन्होंने लिखा था— अमृता प्रीतम की कविताओं में रमना हृदय में बसन्त की व्यथा का घाव लेकर प्रेम और सौन्दर्य की धूप छाँह वीथि में विचरने के समान है। इन कविताओं के अनुवाद से हिन्दी काव्य भाव धनी स्वप्न-सशक्त तथा शिल्प समृद्ध बनेगा। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने भी एक लम्बा लेख लिखा जिसे उन्होंने अपने ग्रन्थ समीक्षा के संदर्भ में भी सम्मिलित किया। इसकी कुछ पंक्तियाँ थीं— संग्रह हाथ में आया। एक कविता पढ़ी फिर दूसरी फिर तीसरी और फिर तो जैसे मन पर अधिकार न रहा। आज पन्तजी और भगवतशरणजी के ये कृपापूर्ण शब्द फिर एक बार पढ़कर अपने मन पर मेरा अधिकार नहीं रहा है। वह ऐसे विशाल हृदय साहित्यकारों के सामने नत हो गया है।

१९६८-६९ में मिशीगन स्टेट यूनिवर्सिटी की ओर से कार्लो कपोला ने जब अपनी पत्रिका का एक सम्पूर्ण अंक मेरी रचनाओं पर प्रकाशित किया था उसमें भी एक हिन्दी लेखक रेवतीसरन शर्मा ने मेरे उपन्यासों पर बहुत विस्तार-सहित एक लेख लिखा— दी सर्च फॉर फेमिनिन इन्टीग्रिटी।

कुछ बहुत प्यारे पत्र भी मेरे सामने एक फाइल में पड़े हुए हैं

प्रिंसिपल तेजासिंह पंजाबी भाषा के प्रथम आलोचक थे, और अपने ढंग के अन्तिम भी। उनका एक पत्र है २३ मार्च १९५० का— अज़ीज़ी अमृता! अखबारों की बेढंगी चाल देखकर दिल न छोड़ना। आप अनन्त काल के लिए हैं। यदि कोई एक समय आपकी काव्य प्रसिद्धि को न भी संभाल सके तो कुछ परवाह

नहीं।'

बंगाल के प्रसिद्ध लेखक प्रबोधकुमार सान्याल १९६० में नेपाल में मिले थे। वहां पहली बार उन्होंने मेरी कविताएं सुनीं और मैंने उनका गंभीर व्यक्तित्व देखा। बाद में दिल्ली आकर उनका वह प्रसिद्ध उपन्यास पढ़ा—'महाप्रस्थान के पथ पर', जिस पर कभी फिल्म भी बनी थी और उन्होंने कलकत्ता पहुंचकर मेरा उपन्यास 'पिंजर' पढ़ा। एक दो पत्रों में इसका उल्लेख हुआ। कुछ वर्ष बाद वह दिल्ली आए तो उनके पास मेरा पता नहीं था कुछ अंदाज-सा था कि कुतुबमीनार की ओर जाते हुए रास्ते में कोई कालोनी है, और बस इतने से ही अंदाजे को लेकर वह मेरा मकान ढूंढने लगे।

वह कॉलोनियों में घूमकर उन्होंने दोपहर के समय मेरा मकान ढूंढ ही लिया। गर्मियों की जलती हुई दोपहर थी—मैं उन्हें पसीने पसीने देखकर हैरान हुई तो वह हंसने लगे और बोले—'मैंने सोचा, आखिर तो तुम्हारा मकान दिल्ली में ही है। ज्यादा से ज्यादा हर मकान देखना पड़ेगा, पर मकान तो ढूंढ ही लूंगा' ऐसे स्नेह के आगे सचमुच सिर झुक जाता है।

हनोई से वियतनाम के विख्यात कवि स्वन जिआओ (Xuan Dieu) का एक पत्र है २ फरवरी, १९५८ का—'बसंत उत्सव (वियतनामी पारम्परिक चांद्र नव वर्ष) आ रहा है और आपकी कविताओं का संग्रह आड़ू पुष्प के रंग की जिल्द में लिपटा हुआ, मुझे आभास दिला रहा है कि बस तमेर पास पहले ही आ गया है। हमारे प्रेसिडेंट हो चो मिन्ह शीघ्र ही आपके महान् देश की यात्रा पर जाने वाले हैं। मैं समझता हूं आप उनके उन दोस्तों में हैं जो उनका हृदय से स्वागत करेंगे।

पूना से श्री दि० के० बेडेकर का पत्र है—मेरे नाम नहीं श्री प्रभाकर माचवे के नाम २१ जुलाई १९५३ का लिखा हुआ— ऊंचे शब्दों का मोह टालकर 'पिंजर' की कथा लिखना किसी भी कलाकार के संयम की परीक्षा थी। मूल आत्मा को ही सामने रखकर एक एक शब्द लिखने से यह अनायास संयम इस श्रेष्ठ कलाकृति में प्रतीत होता है। मैं तो अपने को धन्य समझता हूं कि ऐसा उपन्यास पढ़ने को मिला। मन में एक ही प्रबल इच्छा है— 'पिंजर' की कथा मराठी वाचकों को पढ़ने को मिले। मेरे मित्र श्री जोशी अच्छे कथा-लेखक हैं वह 'पिंजर' का अनुवाद करेंगे और मूल कथा का हृदय जागता रहेगा'

प्रभाकर माचवे सदा ही बड़े कृपालु मित्र रहे हैं। उनकी अनेक खामोश और गंभीर महरबानियां याद आ रही हैं।

जनेंद्रकुमार हिंदी के प्रथम लेखक थे—मैंने उन्हें देखा नहीं था—जब उन्होंने मेरा एक उपन्यास पढ़कर किसी को पत्र लिखा और उसकी प्रशंसा की और उसने वह पत्र मुझे भेज दिया। वह पत्र आज मुझे मिल नहीं रहा है पर जनेन्द्रजी तो सदा ही बड़े अच्छे मित्र रहे हैं।

चार्ल्स ब्रैश न्यूजीलैंड के प्रसिद्ध कवि थे, 'लैंडफाल' के सम्पादक। उनका ६ मार्च १९६४ का लिखा हुआ पत्र मेरे सामने है—'मैंने 'द स्केलेटन' ('पिंजर' का अंग्रेजी अनुवाद) पढ़ा है और मैं आपको बताना चाहता हूं कि मैंने इसे कितना मर्म द्रावक पाया। आपने कथा का सहृदयता मितव्ययिता तथा संयम से निर्वाह किया है। आप इस पर सहज गर्व कर सकती हैं।"

साथ ही स्मरण हो आ रहा है कि इसी उपन्यास 'पिंजर' के विरुद्ध भर एक समकालीन लेखक ने बड़ा कष्ट उठाकर अनेक पत्र अखबारवालों और रेडियो वालों को भेजे थे, और साथ ही यह मांग की थी कि मेरे गीत रेडियो से प्रसारित न किए जाएं।

फाइल में रखे हुए अनेक प्यारे खत फिर से पढ़ते समय, और जो अपनी भाषा में मेरे साथ होता है उसे स्मरण करते हुए कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे एक ही समय में मैं एक बहुत ठंडी और बहुत गर्म नदी में नहा रही हूं

अग्नि-स्नान

Create an idealized image of yourself and try to resemble it —ये शब्द काजानजाकिस ने अपनी पहली मुलाकात में अपनी प्रेमिका से कहे थे। मुझसे ये किसी ने नहीं कहे पर मैंने सुने थे—अपने अंदर से सुने थे

और फिर अपने होंठों से ही अपने कानों को कई बार सुनाती रही—तब भी जब इनके अमल से चूक जाती थी

मैं यह नहीं कहती कि इन शब्दों का तिलिस्म मेरी पकड़ में आ चुका है—केवल यह कि सारी उम्र ये मेरे सहायक रहे हैं। इनका तिलिस्म ही शायद इस बात में है कि अपनी सूरत जब भी अपने कल्पित आपे से कुछ मिलने लगती है—कल्पित आपा और भी सुन्दर होकर दूर जाकर खड़ा हो जाता है।

केवल यह कह सकती हूं कि सारी उम्र इस तक पहुंचने के लिए एक जतन करती रही हूं।

जतन अपने आप में एक ढाढ़स होता है—इसने ही एक बार कुछ ऐसी ढाढ़स

दी थी कि अठारह वर्ष से एग्ज़ीमे का कष्ट भोगने वाले अपने पति से कह सकी थी आपके मन ने यह तलाक स्वीकार कर लिया है पर आपके मन ने अभी इर्द गिर्द के लोगों की गुस्ताख आंखों और असली जीभों के सामने इस सच को स्वीकार नहीं किया है। मुझसे अलग होने की घटना लोगों को देख लेने दीजिए। वे चार दिन बोल-बककर जब चुप हो जाएंगे, हम अपने भीतर की सच्चाई को उनकी आंखों की आग में से लघाकर ले जाएंगे—तब इस अग्नि-स्नान के बाद हम निरोग हो जाएंगे।' एक पेशीनगोई सी भी की 'आपका एग्ज़ीमा दूर हो जाएगा। और हमने अलग होने की तारीख निश्चित कर ली—आठ जनवरी। यह १९६३ के सितम्बर की बात है। बरस चढ़ते, जनवरी की आठ तारीख को, अपने निश्चित किए हुए दिन, हम अलग हो गए। और फरवरी में उनका एग्ज़ीमा बिलकुल ठीक हो गया अठारह वर्ष बाद और बिना किसी दवा दारू के।

सोचती हूं—यह सच का सामना करने का साहस था जिसने मन का, और तन को बल दिया।

कुछ इसी तरह की घटना १९६० में भी हुई थी। इमरोज़ की मुहब्बत में सचाई ज़रूर थी पर उसमें बहुत गहरे कहीं दुविधा भी मिली हुई थी, बहुत हद तक उसकी अपनी दृष्टि से भी ओझल। वह इस दुविधा के पलों को 'काला आदमी' कहा करता था—जो कभी-कभी उसके अन्तर में से उभरता और फिर अन्दर ही कहीं लोप हो जाता था। यह शायद मेरा और उसका चेतन-जतन था कि वह दुविधा कुछ समय के लिए इतनी गहराई में उतर गयी कि फिर सतह पर उसका अस्तित्व कहीं दिखाई नहीं दिया। हमें लगा, हम उससे मुक्त हो गए हैं। पर इमरोज़ को बुखार आने लगा। ऐक्स रे भी लिये, पर वह ऐक्स रे में कहां दिखाई देनी थी। बुखार आते हुए दूसरा महीना लग गया—और तब वह अपने आप ही सतह पर आ गयी। मैं जानती हूं उन दिनों के मेरे आंसू मेरे कल्पित आपे की रूपरेखा से मेल नहीं खाते थे मैं उससे बहुत छोटी हो गयी थी पर यह स्पष्ट सा हो गया था कि जब तक वह मुझसे बहुत दूर नहीं हो जाएगा, उसका बुखार नहीं उतरेगा। एक-दूसरे की सरज़मीन को पाने के लिए दूरी के रेगिस्तान से गुज़रना जरूरी था —यह जानने के लिए कि अन्तर की प्यास कितनी है और किसलिए है। जब दूरी का कदम उठा लिया—चाहे वह बहुत कठिन था—तब इमरोज़ का बुखार उतर गया।

यह और बात है कि इस दूरी को हमने पूरे तीन बरस दिए। और बदले में इसने हमें आप की पहचान दी। और इमरोज़ को विश्वास हो गया कि इस दुनिया में उसे केवल मेरी आवश्यकता है।

पर दो महीने के बुखार के उतरने का चमत्कार—केवल उस हिम्मत के कारण हुआ था कि हम आधा सच नहीं जीएंगे। उठाया हुआ कदम अगर पूरा सच नहीं

हाथ की रेखा जगह-जगह से टूटी हुई है।' इमरोज ने अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर कहा—'अच्छा है, फिर हम दोनों एक ही रेखा में गुजारा कर लेंगे।'

१९६४ में जब इमरोज ने हौज खास में रहने के लिए पटलनगर का मकान छोडा था तब अपने नौकर की आखिरी तनखाह देकर उसके पास एक सौ और कुछ रुपये बचे थे। पर उन दिनों उसने एक ऐडवर्टाईजिंग फर्म में नौकरी कर ली थी बारह तेरह सौ वेतन था इसलिए उसे कोई चिन्ता नही थी। पर एक दिन दो तीन महीने बाद—उसने लाउड थिंकिंग के तौर पर मुझसे कहा— मेरा जी करता है मेरे पास दस हजार रुपया हो ताकि जब जी में आए नौकरी छोड सकूं और अपने मन का कोई तजुर्बा कर सकूं।' महगाई बढ रही थी, पर उसकी कही हुई बात, मेरा जी करता था पूरी हो जाए। जल्दी ही एक साधन भी बन गया— इमरोज को वेतन के अतिरिक्त पांच सौ रुपये मासिक का काम अलग मिल गया। सो खर्च में जितनी कमी कर सकती थी, की और इमरोज ने दस हजार रुपये जोडने की लगन लगा ली।

लगभग सवा बरस में सचमुच दस हजार रुपया इकट्ठा हो गया, और इमरोज ने एक दिन अचानक नौकरी छोड दी। अलग काम का पांच सौ का अलग आसरा था, वह भी अगले महीने अचानक बन्द हो गया। मुझे तीन महीने के लिए यूरोप जाना था चली गयी। मेरी अनुपस्थिति में इमरोज ने बाटिक का तजुर्बा करना सोच लिया और उसके लिए अपने भाई को दक्खिन की ओर भेज दिया कि वहां से बाटिक का एक अच्छा कारीगर खोजकर ले आए।

मैं यूरोप से वापस आयी तो पहले से ही इमरोज ने ग्रीन पार्क में तीन सौ रुपये मासिक पर एक मकान किराये पर लिया हुआ था जिसमें दो कारीगर रहते थे, और कडाहों में रंग उबालकर नये खरीदे हुए कपडों के थानों पर बाटिक का तजुर्बा कर रहे थे। रंग एकसार नही आ रहे थे, और इन धब्बेदार कपडों का ढेर के ढेर फेंका जा रहा था।

उन दिनों इमरोज का मिजाज दिल्ली के उस मौसम की तरह था जब दोपहर के समय शरीर लू की तपिश में जलने लगता है और शाम पडते ही ठंड से सिहरने लगता है। कुछ कहना चाहा—पर सारे शब्द व्यर्थ थे।

ढाई सौ रुपये महीने पर एक दर्जी आ गया जो अच्छे बने कपडों को काट काटकर कमीजों की शक्ल में सिलता था।

पर कमीजों की कमर का साइज उर्दू शायरी की हसीना की कमर की तरह था

ऐसी कोई पांच सौ कमीजों का हश्र यह हुआ कि इन्हें बरसों तक संभालकर रखने के लिए एक अलमारी बनवानी पडी और एक बडा ट्रंक खरीदना पडा। एक दिन की बात याद आ जाती है तो आज भी हंसी छूट पडती है। एक दिन एक

अमरीकन स्त्री को एक कमीज बहुत प्रसन्द आयी। वह देख रही थी कि उर्दू शायरी की हसीना की कमर के लिए सिली हुई यह कमीज उसके नही आएगी पर उसन एक पर्दे की आट मे होकर किसी तरह उस कमीज को अपन शरीर पर फसा लिया। उतारन लगी तो गले से न निकले। हारकर उसन पर्दे के पीछे स आवाज दी—'प्लीज़ गैट मी आउट ऑफ दिस शट।'

दस हज़ार बिलकुल खत्म हो गए तो इमरोज़ ने अपना इकलौता प्लॉट बेच दिया। साढे छह हज़ार म बिका। एक बरस के इस तजुर्बे मे, किताबो के इक्का दुक्का टाइटिल बनाकर उसने जो कमाया था—उसे भी मिलाकर—खच का पूरा जोड बीस हजार हो गया।

और फिर बाटिक स उसका जी भर गया। इस तजुर्बे मे सिल्क की एक कमीज और सिल्क की एक साडी जो इमरोज ने अपने हाथो स बनाई थी, मरे पास है। जब भी यह कमीज या साडी पहनन लगती हू बीस हज़ार का खयाल आ जाता है। और कभी उदास होन लगती हू तो इमरोज हसकर कहता है—'इतनी कीमती साडी तो किसी मलिका ने भी न पहनी होगी तुम्हे खुश होना चाहिए कि आज तुमने दस हज़ार की साडी पहनी हुई है । सो, मेरी यह साडी भी दस हज़ार की है और कमीज भी दस हज़ार की

मैं सचमुच अमीर हू—यह इमरोज के उस हौसले की अमीरी है जो बीस हज़ार रुपये खोकर इस तरह हस सकता है। और यह बीस हज़ार भी वह जो उसने न उससे पहले कभी देखे थे न बाद म

इमरोज़ को समझना कठिन नही। उसमे एक रेखा है जो बराबर चली आ रही है—हथेली पर नही, मस्तिष्क के सोचने मे। उसके मन म चीजो के वे रूप उभरते हैं जिन्हे कागज़ पर कपडे पर या लकडी लोहे पर उतारना, उसके वश की बात है। केवल बडे साधन उसके वश के नही हैं।

उसके टक्सटाइल के अत्यन्त सुन्दर डिज़ाइन बनाए थे। मैं उन्हे देखती थी तो कहती थी—यह अगर सचमुच कागजो से उतरकर दो-दो गज के कपडो पर आ जाए तो सारे हिन्दुस्तान की लडकिया परिया बन जाए

यह डिज़ाइन कागजो पर बनाना उसके बस मे था, उसने बना लिय, पर इन्ह कपडा पर उतारने के लिए एक मिल की आवश्यकता थी। हमारे मुल्क की गरीबी यह नही है कि उसके पास मिलें नही हैं गरीबी यह है कि मिलवालो के पास दृष्टि नही है। ये डिज़ाइन दो बार दा मिल मालिको को दिखाए थे पर अनुभव यह हुआ कि व लोग आईन रड के उस वाक्य क अनुरूप हैं जो एसे लोगा के लिए उसने उनके भाग्य के समान ही लिखा था—पर्फेक्ट ईडियटस।

वास्तव म इसी विवशता के कारण इमरोज ने बाटिक का माध्यम सोचा था, कि कुछ डिजाइन मिला की मोहताजी से मुक्त होकर कपडा का शरीर छू सकें।

यह और बात है कि यह काम जब तक कारीगरों के हाथ में रहा, वणन-योग्य नहीं था, पर जब अन्त में इमरोज़ ने उसका सारा श्रम अपने हाथ में ले लिया, कुछ चीज़ें ऐसी तयार हुई कि आग्रह हटाए नहीं हटती थीं। पर ऐसी चीजों के लिए कुछ जापानियों और अमरीकनों के सिवाय कोई खरीदार नहीं था। और साथ ही यह भी था कि यह हुनर जब इस शिखर पर पहुंचा, तो दो गज़ कपड़ा खरीदने के लिए भी पैसे नहीं रह गए थे।

यह साधारण-सा माध्यम भी पहुंच के बाहर हो गया तो इस तजुर्बे का सिलसिला खत्म हो गया। फिर धीरे धीरे वे तजुर्बे अस्तित्व में आए जिनके लिए एक बार में सौ पचास रुपयों से अधिक की आवश्यकता नहीं होती थी। इमरोज़ ने घड़ियों के डायल डिज़ाइन करने शुरू किए। जब चालीस पचास रुपये इकट्ठे हो जाते वह एक घड़ी खरीद लाता और उसका डायल डिज़ाइन करता। आज भी हमारी एक अलमारी उन घड़ियों से भरी हुई है जिन्हें रोज़ चाबी देना मुमकिन नहीं है—पर कभी-कभी हम वह अलमारी खोलते हैं तो सारी घड़ियों को चाबी देकर उनकी टिक टिक वयोवन की सिम्फनी की तरह सुनते हैं

घड़ियों में सदा 'एक समय' होता है पर इमरोज़ ने 'दो समय' घड़ियों में पकड़ने चाहे। एक तो साधारण समय जो सूइयां बताती हैं और दूसरा वह जो विश्व के कुछ कवि शब्दों में पकड़ते हैं। इसलिए इमरोज़ ने नम्बर वाले डायल निकालकर घड़ियों में वे डायल डाले जिन पर उसने विश्व के कवियों की वे पंक्तियां लिखी थीं जिनमें अनेक पल छिन पकड़े हुए थे।

जो घड़ियां सम्भालकर रखी हुई हैं उनमें से किसी के डायल पर फ़ैज़ का शेर है किसी पर कासमी का किसी पर वारिस शाह का किसी पर शिवकुमार का

इसी तरह इमरोज़ के कुछ कलेंडर डिज़ाइन हैं। किसी की शक्ल चौकोर मेज़ के समान है जिस पर तारीख और वार शतरंज के मोहरों की तरह बिछे हुए हैं। किसी की शक्ल एक वृक्ष के समान है जिस पर तारीख और वार के हरे-हरे पत्ते लगे हुए हैं। किसी की शक्ल एक साज़ के समान है जिसके तार कसने वाली चाबियां बरस के महीने और वार हैं।

यह सब-कुछ अगर अपने देश में और विदेशों में दिखाया जा सकता तो हिन्दुस्तान का नाम अमीर हो सकता था। पर किसी सरकारी मशीनरी को चाबी दे सकना न मेरे वश की बात है, न इमरोज़ के।

जब कोई किसी का वर्तमान अपनाता है तो वास्तविक अपनत्व में, उसका और दूसरे का अतीत भी, शामिल हो जाता है—अलग-अलग नहीं रह जाता—भले ही वह आंखों देखा नहीं होता फिर भी वह अपने अस्तित्व का हिस्सा बन जाता है—अपने शरीर के किसी पुराने घाव की भांति।

इमरोज़ जानता है मोहनसिंहजी के प्रति मेरे आदर में मेरी मुहब्बत

शामिल नहीं थी। एक बार जब उसकी किताब जन्म ले रही थी यह पवर स्विाइन बना रहा था ता किताब की मुख्य कविता के अनुसार उस टाइटिल के ऊपर दो ताले बनाने थे—मेरे दो बच्चे जो साहिर से विचार में थे पूरा के ताले थे—पर उसने टाइटिल पर तीन ताले बनाए। कहने लगा—'तीसरा सबसे बड़ा ताला तो मेरे बच्चा की मा थी जो साहिर को स्वीकार नहीं किया। इसलिए मैंने अधूरी कविता को पूरा करने के लिए दो की जगह तीन ताले बना दिये हैं।

और इमरोज जानता है मैं साहिर से मुहब्बत की थी। यह जानकारी अपने आप में बड़ी बात नहीं है, इससे आगे जो सचमुच बड़ा है वह इमरोज का मेरी असफलता को अपनी असफलता समझ लेना है।

इमरोज जब साहिर की किताब आओ, कोई ख्वाब बुनें का टाइटिल बना रहा था तो कागज लिए हुए कमरे से बाहर आ गया। बाहर के कमरे में मैं और देवेन्द्र बैठे हुए थे। उसने टाइटिल दिखाया। देविन्दर ही एक दोस्त है जिससे मैं साहिर की बात करती थी इसलिए देविन्दर ने कुछ अतीत में उतरकर एक बार टाइटिल की ओर देखा एक बार मेरी ओर। पर मुझसे, और देविन्दर से भी पहले इमरोज ने मेरे अतीत में उतरकर कहा— साला ख्वाब बुनने की बात करता है बनने की नहीं।'

मैं हंस पड़ी— साला जुलाहा सारी उम्र ख्वाब बुनता ही रहा किसी का ख्वाब न बना।

मैं देविन्दर इमरोज कितनी ही देर तक हंसते रहे—उस दर्द के साथ जो ऐसे अवसर पर कभी हंसी में शामिल होता है।

कभी हैरान हो जाती हूं—इमरोज ने मुझे कैसा अपनाया है उस दर्द के समेत जो उसकी अपनी खुशी का मुखालिफ है

एक बार मैंने हंसकर कहा था, ईमू! अगर मुझे साहिर मिल जाता तो फिर तू न मिलता'—और वह मुझे मुझसे भी आगे अपनाकर कहने लगा, मैं तो तुझे मिलता ही मिलता—भले ही तुझे साहिर के घर नमाज पढ़ते हुए ढूंढ लेता!

सोचती हूं—क्या कोई खुदा इस जैसे इन्सान से कहीं अलग होता है

इमरोज अगर ऐसा न होता जैसा है तो मैं उसकी ओर देखकर यह शेर कभी न लिख सकती— बाप वीर दोस्त ते खाविन्द, किसे लफ्ज दा कोई नहीं रिश्ता, उंज जदों मैं तैनूं तकिया—सारे अक्खर गूढ़े हो गये।[1]

इमरोज के पास मेरे कई पत्र हैं पर इनमें से एक मेरे मन का चित्रण करने

[1] पिता भाई मित्र, और पति—किसी शब्द का कोई रिश्ता नहीं। पर जब तुझे देखा, ये सारे अक्षर गाढ़े हो गए।

वाला वह पत्र मिलता है जो मैंने अगस्त, १९६७ में उसे यूगोस्लाविया से लिखा था—

ईमेवा ! यथार्थ की सीमाबन्दी से घबराकर पायी हुई एक वस्तु होती है—फैंटसी ! पर सोचती हूँ जो स्थिरता से प्राप्त किया जाता है वह फैंटेसी के आगे होता है। इसलिए तेरा जिक्र उससे आगे है—बियॉन्ड फैंटेसी !

'हेनरी मिलर के शब्दों में सारे आर्ट एक दिन समाप्त हो जाएंगे पर आर्टिस्ट अवश्य रहेंगे और ज़िन्दगी एक आर्ट' नहीं होगी आर्ट होगी। अगर यह मान लिया जाए कि हेनरी मिलर का यह कल्पित समय एक हज़ार वर्ष बाद आ जाएगा तो यह कहूँगी कि समय से एक हज़ार साल पहले पैदा हो जाना तेरा कुसूर है। यह हर उस व्यक्ति का कुसूर है जो सिर से पैर तक जीता है। इस दुनिया में अभी लोग इस तरह के नहीं होते। हर व्यक्ति का आधा कुछ जन्म लेता है आधा माँ की कोख में ही मर जाता है। हर मनुष्य अभी अपना बहुत-सा भाग कोख की कब्र में दफ़न करके जन्म लेता है और उसके लिए किसी पूर्ण मनुष्य को देखने से बढ़कर और कोई दुखदायी बात नहीं होती। सो इस दुनिया की तेरे प्रति उदासीनता स्वाभाविक है—या ऐसे कहूँ कि हर वर्तमान की जड़ें केवल अतीत में होती हैं पर तेरे जैसे उस व्यक्ति का क्या हो जिसके वर्तमान की जड़ें केवल भविष्य में हैं। अगर एक हज़ार साल बाद छपने वाले किसी अख़बार की प्रति मैं आज बाज़ार में ख़रीद सकूँ तो मुझे विश्वास है कि मैं उसमें तेरे कमरे में बन्द पड़ी हुई तेरी कलाकृतियों का विवरण पढ़ सकती हूँ।

पर्फेक्शन' जैसा शब्द तेरे साथ नहीं जोड़ूँगी। यह एक ठंडी और ठोस सी वस्तु का आभास देता है और यह आभास भी कि इसमें से न कुछ घटाया जा सकता है न बढ़ाया जा सकता है। पर तू एक विकास है जिससे नित्य कुछ झड़ता है और जिस पर नित्य कुछ उगता है। पर्फेक्शन शब्द एक गिरजाघर की दीवार पर लगे हुए ईसा के चित्र के समान है—जिसके आगे खड़े होने से बात ठहर जाती है। पर तुझसे बात करने से बात चलती है—एक सहजता के साथ—जैसे एक साँस में से दूसरा साँस निकलता है। तू जीती हुई हड्डियों का ईसा !

एक पराए देश से तुझे पत्र लिखते हुए याद आया है कि आज पन्द्रह अगस्त है—हमारे देश की स्वतन्त्रता का दिन। अगर कोई इन्सान किसी दिन का चिह्न बन सकता हो तो कहना चाहूँगी कि तू मेरा पन्द्रह अगस्त है, मेरे अस्तित्व की और मेरे मन की अवस्था की स्वतन्त्रता का दिन !

—अमृता

डुब्रोवनिक (यूगोस्लाविया)

एक सिलसिला

५ फरवरी १६७२ के 'स्टेट्स्मैन' में मैंने एक लेख लिखा था 'एक रोमानियन कविता में एक कवि पडोसियों से कुर्सियां मांगकर ले आता है और खाली कुर्सियों को अपनी कविताएं सुनाता है। सोचता है कि खाली कुर्सियां सबसे अच्छी श्रोता होती हैं। उनमें न उत्साह का दिखावा होता है न वे कविताओं का मखौल करती हैं। पर इस प्रकार के अहसास वंचित हमारे कितने लेखक हैं जो केवल कुर्सियों के पीछे दौड रहे हैं। स्थापना के हाल कमरों में 'कल्चरल फर्नीचर' बनाना उसकी अन्तिम मंजिल प्रतीत होती है।' और इसी लेख के आगे के भाग में कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं— पर वास्तविक लेखक अपने पाठकों की रगों में जीता है उनके स्वप्नों में और उनके जीवन के अंधेरे कोनों में'

यह सब-कुछ लिखते समय इसमें एक नयी उदासी यह भी शामिल थी कि साहित्य अकादमी के अवार्ड के लिए एक या दो वोटों के आधार पर रिकमंड हुई एक समकालीन की किताब थी, जिसे पढा तो लगा कि इस किताब को अवार्ड मिलना न लेखक के साथ न्याय होगा न पंजाबी साहित्य के साथ। इसलिए मैंने अपना अन्तिम वोट इस किताब को नहीं दिया। और इस कारण से मेरे समकालीन ने मुझसे नाराज होकर चंडीगढ में जो पेपर पढा था उसमें मेरे नाविलों को नावलचू कहकर और कविताओं को नकल कहकर जी भरकर निंदा की थी।

पर इस वर्ष के मध्य में इस बात का और भी हास्यास्पद रूप देखने में आया— जब जुलाई के अन्तिम सप्ताह में एक और समकालीन के घर बैठकर उस समकालीन शराब का प्याला हाथ में लेकर खुशी से नाचते हुए कहा 'आ गया, बीबी काबू में आ गयी आ गयी, बीबी काबू में आ गयी तीन साल के लिए काबू में आ गयी और उसने सामने बैठे एक और समकालीन को बताया— मैं भारतीय ज्ञानपीठ कमेटी में आ गया हूं अब तीन साल तो बीबी को अवार्ड लेने नहीं देता और पास बैठे एक और मेहरबान समकालीन ने उसके स्वर में स्वर मिलाया— आ गयी बीबी काबू में आ गयी पांच साल के लिए काबू में आ गयी और उसने बताया कि साहित्य अकादमी की एक्जिक्यूटिव में होने का यह अमृता का आखिरी साल है अगले पांच सालों के लिए नया चुनाव होगा, हम अमृता को अकादमी के पास नहीं फटकने देंगे'

मैं वहां होती तो एक से 'अकादमी मुबारक' और दूसरे से ज्ञानपीठ की

मेम्बरी मुबारक' कहती पर वहा केवल मोहनसिंह था जिसने इस जैसी बचकाना हरकता को केवल उन्नासी के साथ देखा और सवेरे मेरे घर आकर मुझे उदासी के साथ सुना गया।

इनामा और रतवो की तेज रोशनी म खडे हुए वे लाग खामखाह हवा म तलवारें मार रहे हैं। मैं वहा नही हू। कभी भी नही थी, न कभी होऊगी। एक ही तमन्ना थी कि मैं अपन दिल और अपन पाठका के दिल के एक कान म रहू, जहा तक भी जा सकी हू—सिफ वहा हू—सिफ वहा

इस वप के अन्त म फिर वसे ही दिन आए। चडीगढ से एक समकालीन का टेलीफोन आया—

'इस बार किस किताब का बोट देनी है ?'

जो आपको अवाड के याग्य लगती है, उसे दे दीजिय ।

'उस जिसने लनिन पर किताब लिखी है ?'

लनिन पर उसकी किताब बहुत घटिया है।'

हा घटिया तो है पर वह बूढा हो गया है उस अवाड मिल जाना चाहिए। और उसन मुझसे पूछा कि मेरी दष्टि मे मियार क अनुसार किस अवाड मिलना चाहिए ?

मियार के अनुसार, सामने आयी हुई नौ किताबो म केवल एक किताब था तीन रातें, जिसके पहले भाग म किस्मा की पुरानी परम्परा को नये सिर स उज्जीवित किया गया था और दूसर भाग म आज की कहानी और आज के गद्य क उत्तम प्रमाण मिलत थे, इसलिए अपनी राय जिस ईमानदारी से सोची थी, उसी ईमानदारी म बता दी—और मरे समकालीन का टेलीफोन बन्द हो गया।

फिर औरो से सुना कि तीसरी राय का बन्दोबस्त कर लिया जाएगा और उन दा राया का मिलाकर मरी राय का रद्द कर दिया जाएगा।

मियार के सबध म किसी की राय भिन्न हो सकती है पर यहा मियार का प्रश्न नही था यहा जिद का प्रश्न था। सा जिद पूरी की गयी और अवाड का इतजाम कर लिया गया।

पहली जनवरी १९७३ के दिन साहित्य अकादमी की एक्जीक्यूटिव सदस्या क प स पाच साल के बाद, निवत्त हुई हू। किसी जिम्मेदारी स निवृत्त हाना भले ही 'मुक्ति शब्द के साथ नहीं जोडा जा सकता पर अनुभूति अवश्य मुक्ति के समान ही है, इससे इनकार नही कर सकती।

इन वर्षों म जब सिफारिशा के फोन आत थे, या घर की घटिया बजती थी, हमकर इमरोज से कहा करती थी सबका यह समझा दो कि पाच बरस क लिए मैं घर पर नहा हू।' पर इस अन्तिम वप सिफारिश क साथ किसी के हाथ किसी की धमकी भी आयी कि अगर उसे अकादमी का अवाड नही मिला ता वह जी

"कुछ दर हुई एक कविता लिखी थी—अक्षर। उस कविता की कुछ पक्तिया हैं—

"इक्क पत्थरा दा नगर सी
सूरजवश दे पत्थर
त चदर वश दे पत्थर
उस नगर विच्च रह्‌दे सन
ते कह्‌दे हन—
इक्क सी सिला ते इक्क सी पत्थर
त उह्‌ना दा उस नगर विच्च सजोग लिखिया सी
ते उहना न रल के इक्क वजत फल चखिया सी
आह खौर चकमाक पत्थर सन—
जा पत्थरा दी सेज ते सुत्ते—
ता पत्थरा दी रगड विच्चो—
मैं अग्ग वाग जम्मी अग्ग दी रत्ते।
फेर वगदीआ पौणा मैंन जित्थे वी खडदीआ
तत्तिया सुआहवा मर पिडे तो झडदिया।
फेर उहिओ हवा क्तिा दौडदी आयी
ते हत्था दे विच कुझ अक्खर ले आई
ते कहिण लग्गी—
एह निक्किया कालिआ लीका ना जाणी
एह लीका दे गुच्छे तेरी अग्ग दे हाणी
त इस तरहा कट्‌दी ओह लघ गयी अग्गे
तेरी अग्ग दी उमरा एहना अक्खरा नू लग्गे[1]

---

[1] एक पत्थरो का नगर था
सूर्यवश के पत्थर
और चन्द्रवश के पत्थर
उस नगर म रहते थे—
और कहते हैं
एक थी शिला और एक था पत्थर
और उनका उस नगर म सयोग लिखा था
और उन्होंने मिलकर एक वर्जित फल चखा था
वे न जाने चकमाक पत्थर थे
जो पत्थरो की सेज पर सोए

मैंने जिन्दगी में अगर कोई तमन्ना की है तो केवल यह कि मेरी आग की उम्र इन अक्षरों को लग जाए। आज आपने दिल्ली यूनिवर्सिटी ने, इन अक्षरों को पहचाना है इनकी आग को पहचाना है, और इस पहचान के लिए मैं अक्षरों की इस आग की ओर से आपका शुक्रिया अदा करती हूं।

धर्म-युद्ध

महाभारत का सबसे महान भाग मुझे वह लगता है जहां कौरवों और पांडवों का युद्ध छिड़ने लगता है तो युधिष्ठिर रणक्षेत्र को अकेले और पैदल पार करके सामने शत्रु-सेना में खड़े हुए अपने सगे संबंधियों से युद्ध करने की आज्ञा लेने जाता है।

वह शत्रु-सेना में खड़े हुए भीष्म पितामह को प्रणाम करता है कहता है— मुझे आपसे युद्ध करना है युद्ध की आज्ञा दीजिए, और विजय का आशीर्वाद दीजिये।

भीष्म पितामह उत्तर देते हैं इस युद्ध में मेरा यह शरीर तो दुर्योधन की ओर ही रहेगा क्योंकि उसका अन्न खाया है पर धर्म से युक्त मन तुम्हारी ओर रहेगा तुम्हारी मंगल कामना करेगा तुम्हारी विजय की आकांक्षा करेगा।

युधिष्ठिर ने इसी प्रकार गुरु द्रोणाचार्य को भी प्रणाम किया कृपाचार्य को भी। मैंने अपने समकालीनों से अपनी इस आयु जितनी लम्बी जंग लड़ी है अब इस किताब में उनके संबंध में जो भी लिखने जा रही हूं उनकी लेखनियों का आदर

तो पत्थरों की रगड़ से
मैं आग की तरह जन्मी आग की ऋतु में
फिर बहती हवाएं मुझे जहां भी ले जातीं
गर्म गर्म राख मेरे शरीर से झड़ती
फिर वही हवा कहीं से लौटती आयी
और हाथों में कुछ अक्षर ले आयी
—और कहने लगी—
इन्हें छोटी काली लकीरें न समझना
यह लकीरों के गुच्छे तेरी आग के समय हैं—'
और यह कहते हुए वह आगे बढ़ गयी—
तेरी आग की उम्र इन अक्षरों को लग जाए।

करते हुए उन्ही से इस शुभेच्छा की कामना करती हू कि सिद्धान्तो की इस जग का हाल पूरी तरह लिख सकू।

महाभारत के इसी भाग म युधिष्ठिर ने चारो ओर की सेना के मध्य खडे होकर कहा था, 'जो बहादुर मरी सहायता के लिए मेरी सेना मे आना चाहता है उसका स्वागत है' और यह सुनकर दुर्योधन का छोटा भाई युयुत्स आगे बढा था। इतिहास स्वय को दोहराता है—आज वही शब्द नये लेखको के लिए दोहराती हू कि जो भी सिद्धान्तो की लडाई लडना चाहता है उसका स्वागत है।

यह युद्ध जारी रहगा—मुझ तक, मेरे बाद भी और केवल आज की ही नही, आनेवाली पीढियो म मे भी जो कोई लखनी के सत्य के पक्ष म आना चाहेगा, समय उसका स्वागत करेगा।

मिथक म जसे अनेक चेहरे अनात चेहरो का रूप धारण करके किसी को छलने पाए जाते हैं जीवन मे भी अनेक विश्वास और अनेक आशाए छलावा बन जाती हैं।

साहित्यिक जगत म सन्तसिह सेखो के सबध म मेरी पहले दिन स यह धारणा थी कि एक आलोचक के नाते उसका उत्तरदायित्व और ईमानदारी जसे बुनियादी मूल्यो स सवथा कोई सबध नही है। जसे जसे वष बीतते गए, मेरी राय बहुत ही सत्य सिद्ध होती गयी। मोहनसिहजी के सबध म मेरी राय थी कि वह अच्छे कवि होने के साथ एक नेक दिल व्यक्ति भी हैं किन्तु दुबल हैं, मूल्यो मानो के लिए अड जाने वाले नही हैं। मेरा यह विचार भी कालान्तर मे ठीक सिद्ध हुआ। परन्तु नवतेजसिह के सबध मे मेरा लेख मेरा दोस्त मेरा हमदम और करतारसिह दुग्गल के सबध म मेरा लेख ठडा दस्ताना उनके लिए मेरे समकालीन प्रेम को देखते-देखते झूठे सिद्ध हो गए। पहला लेख एक विश्वास से और दूसरा लख एक आशा के साथ लिखा था, पर मेरा विश्वास भी मुझे छल गया मेरी आशा भी मुझे छल गयी।

हरिभजनसिह स आस जोडी थी पर बहुत नहीं। उसने जब अपने अनुयायियो से मेरे सबध म घटिया लेख लिखवा लिखवाकर उनम एक प्रकार का आनन्द लेना आरम कर दिया मुझे अधिक आश्चय नही हुआ केवल तरस आया कि वह अपने अन्तर के कवि के व्यक्तित्व को अपने हाथो मला कर रहा है।

और जो सार्दूलसिह हमदद या अ य कई एक—अपने मन की तग गलियो म भटकते हुए—जो कुछ भी कर रहे है उनसे मेरा कुछ कही जुडा हुआ नही है न कोइ विश्वास, न कोई आशा—इसलिए न उसके लिए आश्चय होता है, न पीडा। गुरुबचनसिह भुल्लर न मरे और हरिभजनसिह के विरुद्ध एक कहानी गढी जो सवथा झूठ पर आधारित थी, तो इस तमाशे को देखकर केवल ग्लानि से मुह परे कर लिया। यह कहानी प्रीतलडी के मई, १९७३ के अक म छपी थी।

उसी महीने की १५ तारीख को दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से डी०लिट० की आनरेरी डिग्री मिली थी दोस्तों और पाठकों के पत्र आ रहे थे—और इनमें एक पत्र गुरबख्शसिंहजी का भी मिला।

अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक वर्षों में मैंने गुरबख्शसिंहजी के साथ आदर्श जैसे शब्द को भी जोड़ा था, और मन के गहरे आदर को भी। और इसके साथ इस आशा को भी कि अब मूल्यों मानों की रक्षा उनके जिम्मे है। उनके बुजुर्ग हाथ के होते हुए, मुझ जैसे नये साहित्यकारों को कीचड़ से भरी गलियों में से गुजरना कुछ आसान हो जाएगा। पर देखा यह कि बहुत शीघ्र ही इस सब कुछ से वे बे-वास्ता हो गए थे। ठीक है—अपने रास्ते पर अपने पावों से चलना था इसलिए मन में किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं आने दी थी—न शिकायत, न आशा—पर उनके लिए कुछ आदर का रिश्ता मैंने अपने मन में सदा बनाए रखा था। उनकी जीवनी में अपने बारे में कुछ अच्छी पंक्तियां पढ़कर एक पत्र भी लिखा था—'आपकी पंक्तियां को मैंने सिरोपा के समान धारण किया है,' और उत्तर में उनका भी मीठा सा पत्र आया था।

पर जब 'प्रीतलडी' ने मेरे खिलाफ़ कहानी छापी तो, इमरोज़ को घम की एक जगह दिखाई दी जहां खड़े होकर उसने सोचा—'हो सकता है कहानी छपने से पहले गुरबख्शसिंह ने न पढ़ी हो। और इसका चुनाव केवल नवतेजसिंह ने किया हो।' सो, उसने एक दिन एक पत्र गुरबख्शसिंहजी को लिख दिया

'सिर्फ सरदार गुरबख्शसिंह के नाम'

> मई की 'प्रीतलडी' पढ़ी। हैरान हूं कि 'कसवट्टी' जैसी कहानी आपने कैसे छाप दी जो कहानी के तौर पर भी बुरी है और जिस नीयत से लिखी गई है वह भी बुरी है। यह झूठी कहानी है। अमृता को इस प्रकार की रचनाओं से कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर जिस पत्रिका में ऐसी रचना छपती है, उस पत्रिका के बारे में, उसके संपादकों के बारे में अपने दृष्टिकोण में अवश्य अन्तर पड़ जाता है। वैसे तो पंजाबी की बहुत-सी पत्रिकाएं हर महीने अक्सर ऐसी रचनाएं लिख लिखकर छाप-छापकर कागज और अक्षर मैले करती ही रहती हैं। लगता है कि आपने यह कहानी छापने से पहले पढ़ी नहीं। और अगर सच में नहीं पढ़ी तो आपने हमारे साथ और अपनी पत्रिका के साथ बुरा किया है। एक बुरी कहानी की तरह। 'प्रीतलडी' को घटिया और स्कैंडल्स पत्रिकाओं की पंक्ति में खड़ा करके आपने अपने आपसे भी अच्छा नहीं किया है।
>
> एक शिकायत के साथ एक मान के साथ   आपका

२१ ५ ७२   इमरोज़

उमी शाम को एक सयोग घटा, कि अवतार जडियालवी को जो लदन से आए थे कनाट प्लेस म इमरोज से मिलना था। फोन पर साढे छह का समय लिया हुआ था। मुझे सात बजे हैदराबाद से आयी हुई लेखिका जीलानी बानो से वस्टन कोर्ट म मिलना था, इसलिए इमरोज के साथ ही चली गयी। अवतार जडियालवी ठीक समय पर आ गया पर उसके साथ हरिभजनसिंह भी था। अवतार ने चाय पीने के लिए कहा, सो अवतार, हरिभजन, इमरोज और मैं रवल म जाकर ठडी कॉफी पीने लगे। सब बातें कर रहे थे, पर ऊपरी ऊपरी। बातो का कुछ रुख बदलने के लिए मैंने हरिभजन से कहा, 'इस बार 'प्रनिलडी' ने बड प्यार से आपके ऊपर एक कहानी छापी है।'

हरिभजनसिंह ने सतही हसी के साथ, वह आपके खिलाफ भी तो है।'

कहा— मेरे तो है ही। पर मुझे तो ऐसी चीज पढ़ने की अब आदत-सी हो गयी है।' और मैंने हरिभजनसिंह की ओर देखा। दखने का अथ था—मुझे यह सहनशक्ति की आदत डालने वाला म आप भी शामिल हैं आपका भी शुक्रिया।

कुछ देर बाद हरिभजनसिंह ने कहा— पर नवतेज ने किस खयाल से छापी? कम से कम कहानी के तौर पर तो अच्छी होती। बेचारे पाठका का क्या मिला?'

जवाब दिया— बेचारे पाठको की कीमत पर दो जना ने स्वाद ले लिया— एक लिखने वाले ने एक छापने वाले ने।'

हरिभजनसिंह ने कुछ देर चुप रहने के बाद अचानक कहा 'सिर्फ दो आदमियो ने ही नही, मैंने भी कुछ लज्जत ली है—यह कि भुल्लर अब ऐसी खराब कहानिया लिखने वाला हो गया है।'

पर मुझे इस बात का दुख है। 'उपरा मद' जसी अच्छी कहानी लिखने वाला भल्लर अब इस जसी बुरी कहानी लिखने लगा है यह दुख की बात है। मुझे ऐसा ही लगा था कह दिया।

और फिर रवल से उठकर जब मैं और इमरोज एकान्त म हुए तो इमरोज से कहा—'बस यही खराब पहलू है हरिभजन का। आज सरल स्वभाव उसने जो कुछ कहा है, उससे वह अपने दोहरे व्यक्तित्व का भेद खोल गया है। एक अच्छे बन रहे लेखक का इस तरह गिर पडना उसे लज्जत देता है। उसके मन म यह दद नहा उठता कि एक कहानीकार खत्म हो गया '

एक समय था—जब १६६० म मैं इमरोज का साथ चुनने के समय मन के सकट म थी। उस समय मैंने उस चेहरे का ध्यान किया जिसने मुझे जन्म दिया था पर जो अब ससार म नही था इसलिए उस आकृति को गुरबख्शसिंह जी के चेहरे म देखने की चेष्टा की थी। पत्र लिखा था—

जिस हस्ती को दारजी कहकर पुकारती थी, वह आज ससार मे

नही है। वह सबोधन आज आपके लिए प्रयोग कर रही हू, आप एक
दो दिनो के लिए मेरे पास आइए मैं मन के सकट म हू।

उस पत्र के शब्द अब मुझे ठीक याद नही है पर उसका अभिप्राय बिलकुल यही था। परन्तु पत्र के उत्तर म गुरबख्शसिहजी नही आए। खर, मेरी उदासी ने ही मुझे बल दिया, और मैं अकेली ही उस सकट से गुजर गयी।

पर जिस बचपन ने किसी व्यक्तित्व के प्रभाव को गहराई से स्वीकार किया हो उसकी जवानी भी उस प्रभाव का कोइ टुकडा गल स लगाकर रखती है। और फिर उसकी बढती हुइ उम्र भी उसे अपने अतीत की कमाई समझकर अपनी किसी जब म डालकर रखती है। मैंने गुरबख्शसिहजी के इस प्रभाव क कारण उनके पास से आने वाले पत्र की रूपरखा की भी कल्पना कर ली थी। मरे अनुमान से उसका पत्र इस प्रकार था — प्रिय इमरोज ! मेरी प्रीतलडी म ऐसी फालतू कहानी छपन से भी तुम्हारा मान सम्पूण रहा है मैं तुम्हार इस मान को प्यार भेजता हू और जसे तुम्हें लगा है कि यह कहानी छपने से पहले मैंने इस पढा नही था, वह ठीक लगा है। मुझ पर तुम्हारा विश्वास सच्चा है। यह कहानी अगर मैंन पढी होती तो छपती नही।

पर यह पत्र मरी कल्पना म फूला की भाति खिला और इसकी जगह जो पत्र आया उसे पढकर इसका एक एक अक्षर मुरझा गया।

मेरी समझ मे एक लेखक की पहली निष्ठा अपनी लेखनी के मूल्या-माना के प्रति होती है और बेटे बेटिया चाहे कितने ही प्रिय हो उनके प्रति यह जिम्मदारी दूसरे स्थान पर होती है। पर गुरबख्शसिहजी न अपनी लेखनी के प्रति अपनी निष्ठा का हक अदा नही किया। मेरा दद यह था वह कहानी मेरा दद नही थी।

गुरबख्शसिहजी की ओर से इमरोज के पत्र का उत्तर आया, पर उनके इतन कमजोर उत्तर से उनके लिए मरे आदर को भी एक बार शम आ गयी। उनके पत्र म बजाय कुछ अफसोस के लिखा था— मैं सुझाव दूगा कि आप इस कहानी को फिर पढें।

यद्यपि सच यह था कि उस कहानी के लखक न सपादक को पहले ही पत्र लिखा था कि यह कहानी दो समकालीनो के विरुद्ध है पर यदि हिम्मत है तो छाप दीजिए। और सपादक ने यह हिम्मत कर ली थी।

सो जान बूझकर छापी हुई कहानी के बार म अब वह कह रहे थे कि वह अमृता के विरुद्ध नही है और उस कहानी को फिर पढन का सुझाव दे रह थे

मैं नही जानती किसी और भाषा मे एसा होता है या नही पर पजाबी प्रस म यह निश्चित रूप स अवश्य होता है कि कोई भी खबर जसे चाह गढी जा सकती है। जनवरी १९७५ म नागपुर म विश्व हिन्दी सम्मेलन हुआ था। उसम तीस देशो के सौ से अधिक प्रतिनिधिया न भाग लिया था। उन्ह सम्मान देत हुए इस सम्मेलन

की ओर से भारत की पन्द्रह भाषाओं के पन्द्रह लेखकों को भी सम्मानित किया गया था, जिनमें से एक मैं भी थी, पंजाबी लेखिका होने के नाते। इस समाचार में भ्रम की कोई गुंजाइश नहीं थी पर मेरे समकालीनों की एक पत्रिका ने लिखा, मुझे सम्बोधन करते हुए—'आपने विश्व हिन्दी सम्मेलन नागपुर में हिन्दी लेखिका के तौर पर सम्मान लिया है जबकि आपकी हिन्दी में प्रकाशित सभी रचनाएं अनुवाद हैं और आपने इस भेद को छिपाकर अपनी भाषा के साथ धोखा किया है।' बड़ी दिलचस्प बात यह है कि इस पत्रिका से जो लेखक संबंधित हैं वे दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। यदि ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर आसीन लोगों को सत्य की आवश्यकता नहीं है और यदि वे एक सीधे-सादे समाचार को इस प्रकार तोड़ मरोड़ सकते हैं तो साधारण प्रेस से क्या आशा की जा सकती है

कम्यूनिस्ट प्रेस का आम लोगों के प्रेस के स्तर से ऊंचा समझना स्वाभाविक है पर जन-आन्दोलन से संबंधित प्रेस, गंभीर और चिन्तनशील होने के स्थान पर इस प्रकार का है इसकी एक भयानक मिसाल मेरे सामने है। १ अगस्त १९७५ के दैनिक समाचार पत्र 'लोक लहर' में जिस प्रकार गिरे हुए विचारों का लेख छपा, मेरा खयाल है दुनिया के किसी प्रेस में नहीं छप सकता। मेरी मासिक पत्रिका 'नागमणि' को लचर और अश्लील कहा गया, जिसका कारण यह दिया गया था कि चेकोस्लोवाकिया की दुर्घटना के समय मैंने कविताएं लिखी थीं और मुझे तीन रात नींद नहीं आयी थी और यह लेख जितने भद्दे शब्दों में लिखा गया था वह शायद दुनिया के किसी भी प्रेस में नहीं छप सकता।

सबसे अधिक उदास करने वाली बात यह है कि पंजाबी प्रेस के किसी भी कोने से इस प्रकार के सब कुछ के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई जाती

कभी मन भर आता है तो केवल कविता लिख सकती हूं सो लिख लेती हूं, और कुछ भी संभव नहीं है। ऐसे ही किसी क्षण में यह लिखा था—परछावयां नूं पकड़न वालयो! छाती च बलदी अग्ग दा परछावां नहीं हुन्दा।[1]

यह सब कुछ ठीक है पर यही सब कुछ नहीं है। जिस हाथ में भी लेखनी है वह जैसे पृथ्वी की सन्तान है उसी तरह लेखनी की सन्तान भी है इसलिए जिनके हाथों में लेखनी है उनका आपस में निकट संबंध है। सती और हरिजन की लेखनी में जो भी शक्ति है वह इसी नाते मुझे अपनी लगती है और इसीलिए उनके प्रति मेरे मन की विरक्ति में एक पीड़ा भी शामिल है एवं उदासी भी।

जानती हूं लेखनी के नाते से जन्मे मेरे मन के इस अपनत्व का वे लोग

---

१ परछाइयों को पकड़ने वालो! छाती में जलती हुई आग की परछाईं नहीं होती।

नही समझेंगे। ये मूल्य ये मान उनके मन का हिस्सा नही हैं ये केवल मेरे हैं।
यह केवल मैं जानती हू कि केवल वह ही नही, विश्व के किसी भाग म जो कोई
भी कलम के धनी हैं वे मेरे हैं—मेरे अतीत का, मेरे वतमान का और मेरे भविष्य
का हिस्सा। मेरे मन की अवस्था केवल मेरी सीमाओ तक सीमित नही है—न
शरीर तक, न काल तक। वह कोई वह भी हो सकते हैं जो मुझसे हजारो साल
पहले हुए होंगे, और कोई वह भी जो मुझसे हजारो साल बाद होंगे

देखी, सुनी और बीती घटनाए

जीवन की देखी, सुनी या बीती घटनाए कब और किस प्रकार लेखक की रचना
का अंश बन जाती हैं—कभी चेतन तौर पर और कभी बिलकुल अचेतन तौर
पर—यह किसी हिसाब की पकड म नही आता।

विशेषकर अचेतन तौर पर जो अनुभव किसी रचना का अंश बन जाता है,
वह कई बार अपनी आखो के लिए भी एक अचभा-सा हो जाता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर से जब भेंट हुई थी बहुत छोटी थी। कविताए तब भी
लिखती थी पर बचकानी-सी। उन्होंने जब एक कविता सुनाने के लिए कहा तो
सकुचाकर सुनायी थी पर उन्होंने जो प्यार और ध्यान दिया था, वह कविता के
अनुरूप नही था उनके अपने व्यक्तित्व के अनुरूप था। उसका प्रभाव मुझ पर
गहरा हुआ। और फिर जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जन्म शताब्दी मनाई जाने
वाली थी तब मैंने उन पर एक कविता लिखनी चाही। कुछ पक्तिया लिखी भी,
पर तसल्ली नही हुई। फिर मैं मास्को चली गयी (१९६१ म)। वहा जिस होटल
म ठहरी थी उसके सामने मायकोव्स्की का बुत बना हुआ था, और जिस जगह
वह होटल था उसका नाम गोर्की स्ट्रीट था।

एक रात की बात—लगभग दस बजे होंगे मैंने होटल की खिडकी से देखा
कि एक जनसमूह मायकोव्स्की के बुत के गिर्द इकट्ठा है। ज्ञात हुआ कि कई
नौजवान कवि प्राय रात के समय वहा आकर खडे हो जाते हैं और बुत के चबूतरे
पर खडे होकर कभी वे मायकोव्स्की की कोई कविता पढते हैं और कभी
अपनी। रास्ता चलते लोग उनके इद गिर्द आकर खडे हो जाते हैं और कविताए
सुनते हैं फरमाइशें भी करते हैं और इस प्रकार यह खुला कवि-सम्मेलन
आधी रात तक चलता रहता है। हवा ठडी लगने लगे तो लोग अपने कोटो के
कालर ऊपर पलट लेते हैं मेंह बरसने लगे तो सिर के ऊपर छतरी तान लेते हैं।

तो मुझे रूसी भाषा का एक भी शब्द समझ म नही आया, पर उनके स्वर की गर्माहट मेरी समझ म जरूर आया। फिर जब मैं अपने कमरे मे लौटी मेरे सामने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चेहरा भी था मायकोव्स्की का भी, और गोर्की का भी—सारे चेहरे मिश्रित से हो गए—जैसे एक हो गए हो—और उस रात रवीन्द्रनाथ ठाकुर वाली कविता पूरी हो गयी —

महरम इलाही हुस्नदी, कासद मनुखी इश्क दी,
एह कलम लाफानी तेरी, सौगात फानी जिस्म दी [1]

'आक के पत्ते' उपन्यास मे उसका मुख्य पात्र जब रोज शाम के समय स्टेशन जाकर आने वाली गाडियो म अपनी खोई हुई बहन का चेहरा ढूढता है तो एक दिन अनायास ही उसके पैर उसे अपने गाव वाली गाडी के अन्दर ले जाते है। जाडे के दिन, कोई गम कपडा पास नही, वह रात की ठड म गुच्छा-सा बैठ जाता है। विचारो म डूबा हुआ उसका मन नीद म भी डूब जाता है। एक स्टेशन पर गाडी रुकती है तो उतरने चढने वाली सवारियो की आहट से वह जाग उठता है। देखता है—उसके एक रजाई लिपटी हुई है एक बडे नम से चेहरे का बूढा आदमी पास की सीट पर बैठा हुआ है एक खेस लपेटे हुए अपनी रजाई उसे उढाकर। एक दिन अचानक इस उपन्यास का यह अश सामने आया तो याद आया—यह उपन्यास लिखने के चार वर्ष पहले मैं जब रोमानिया से बल्गारिया जा रही थी, रात बहुत ठडी थी पास म अपने कोट के सिवाय कुछ नही था, वही घुटने जोडकर ऊपर तान लिया था। फिर भी जब उसे सिर की ओर खीचती थी तो पैरो को ठिठरन लगती थी पैरो पर डालती थी तो सिर और कधो को ठड लगती थी। न जाने कब मुझे नीद आ गयी—लगा सारे शरीर म गर्मी आ गयी है। बाकी रात खूब गर्माइश म सोती रही। सवेरे तडके जागी तो देखा—मेरे डिब्बे म सफर करने वाले एक बल्गारियन आदमी ने अपना ओवरकोट मुझ पर रजाई की तरह डाल दिया था।

यह घटना मैंने चेतन तौर पर इस उपन्यास म नही डाली थी पर लिख चुकने के कितने ही वर्ष बाद जब पढा तो लगा कि उस रात की गर्माइश मेरी रगों म कही एक अमानत की तरह पडी हुई थी।

'यात्री' उपन्यास १६६८ मे लिखा था। उसकी एक पात्र सुन्दरा बिलकुल कल्पित थी। मैं उपन्यास के मुख्य पात्र की जन्म-कथा जानती थी, उसके सबध म लिखा भी था— नायक को जानती हू उस दिन से जिस दिन उसे साधुओ के एक

---

१ हमराज दैवी सौन्दर्य की, सदेशवाहक मानव प्रेम की
यह लेखनी अमर तेरी सौगात भगुर देह की

डेरे म चढाया गया था। यहुत वरसो की वात, पर अब भी ध्यान आ जाती है तो बहुत तराश हुए नक्श वाला उसका सावला चेहरा, उसकी सारी उदासी के समेत, आखा के सामन आ जाता है। पर सुदरा मेरी कल्पना स निकलकर इस उपन्यास क पृष्ठो म उतरी थी, और मेरी समझ म नही आता था कि सुदरा का पात्र चित्रित करते समय मेरी आखें क्या भर भर आती रही थी।

उपन्यास लिखकर सबस पहले इमरोज को सुनाया था, और सुनान सुनाते जब सुदरा का जिक्र आया, मर अपने कलेजे को जस किसी न कचोट लिया। फिर यह उपन्यास हिदी म उल्था हुआ। हर अनुवाद छपने से पहले सुना करती हू—इस सुनत समय जब फिर सुदरा की वात आयी, मैं बचन हो गयी।

उपन्यास हिन्दी म छप गया। तब १९६९ था। पजाबी म दो वप बाद छपा था—१९७१ म, उसक प्रूफ देखते समय फिर जब सुदरा आयी तो मैं व्याकुल हा गयी।

अपन आपका इस अपन दिल म पडने वाली कसक का कुछ पता नही लगता था। पर १९७३ मे जब इस उपन्यास का अग्रेजी म अनुवाद हो रहा था—उस समय जब सुदरा सामन आयी तो ऐसा प्रतीत हुआ जसे मैं स्वय अपनी नज देख रही हू

लेखक क अपने जीवन की घटनाए—उपन्यासा-कहानियो के पात्रा म सदा ढलती हैं छाती के भीतर से उठती हैं कागजो पर जा उतरती हैं। परन्तु यह सुदरा उसके विपरीत अनुभव है—यह कागजा म स उठकर मेरी छाती म उतर गयी थी अचानक लगा जस घोर अधेरे म एकाएक दीया जल उठे कि यह सुन्दरा मैं हू

मैं को मैंने चेतन तौर पर सुदरा म नही ढाला था इसलिए कई वप तक इसे पहचान नही सकी थी। वह अपना अस्तित्व मुझे भीतर ही भीतर खरोंचता था। मैं मन की तहा को टटोलती थी फिर भी यह पहचान मे नही आता था। पर जब पहचान म आया—ता अपना एक एक विचार तक पहचान म आ गया

सुन्दरा जब मदिर मे जाकर शिव और पावती के चरणो पर फूला की झोली उलटती है ताकि जब वह शिव पावती के चरणो पर माथा नवाए तब फूलो के ढेर के नीच से बाह फलाकर मूर्तिया के पास खडे हुए अपने प्रिय के पैरो को भी हथेली स छू ले और उसके हाथ पर किसी की नजर भी न पडे तो लगा—यह मैं हू जो अनेक वप एक चेहरे की इस प्रकार कल्पना करती रही कि अक्षर ही अक्षर फलो के ढेर की भाति अबार लगा दिए और जिनके नीचे से बाह ले जाकर किसी का इस तरह छू लेना चाहती थी कि ऊपर से किसी देखने वाले को दिखाई न द।

सुदरा वहुत समय तक—चुपचाप—फूल चुनती रही और सबकी चोरी

स अपने प्रिय क पर छूती रही। मैं अनक वर्षों तक कविताओ के अक्षर जोडती रही, और चुपचाप अपने प्रिय के अस्तित्व को छूती रही

सुन्दरा का प्रिय जीता-जागता था—पत्थर की मूर्ति के समान था, जिसे सुन्दरा के मन का सेक नही पहुचता था। और मैं भी अनक वर्षो तक सुन्दरा की जगह पर खडी रही थी—मेरे मन का सेक भी कही नही पहुचता था एक पत्थर जसा चुप स टकराता था, और सुलगता बुझता फिर मेरे पास ही लौट आता था।

सुन्दरा जब शरीर पर विवाह का जोडा और नाक मे सोने की नथ पहनकर मन्दिर म अपने प्रिय को अन्तिम प्रणाम करन क लिए आती है कुछ आसू लुढक-कर उसकी नथ के तार पर अटक जाते हैं—मानो नथ की आखो म आसू भर आए हो—तो यह समूची मैं थी, मेरे हर छाप छल्ल की आखो म इसी तरह आसू भर भर आते थे

आ खुदाया! कभी अपना आप भी अपने से इस तरह छिप छिप जाता है यह अचेतन मन का कैसा खेल है!

पूरे ग्यारह वर्ष की नही थी जब मा मर गयी थी। मा की जिन्दगी का आखिरी दिन मुझे पूरी तरह याद है। 'एक सवाल' उपन्यास म उपन्यास का नायक जगदीप मरती हुई मा की खाट के पास जिस तरह खडा हुआ है उसी तरह मैं अपनी मरती हुई मा की खाट के पास खडी हुई थी और मैंने जगदीप की भाति एकाग्र मन होकर ईश्वर से कहा था—'मेरी मा को मत मारो।' और मुझे भी उसी की तरह विश्वास हो गया था कि अब मेरी मा की मृत्यु नही होगी क्योकि ईश्वर बच्चो का कहा नही टालता पर मा की मृत्यु हो गयी, और मेरा भी जगदीप की तरह ईश्वर के ऊपर से विश्वास हट गया।

और जिस तरह जगदीप उस उपन्यास म मा के हाथो की पकाई एक आले म रखी हुई दो सूखी रोटियो को सभालकर अपने पास रख लेता है— इन रोटियो को टुकडे-टुकडे करके कई दिन खाऊगा —उसी प्रकार मैंने उन सूखी हुई रोटियो को पीसकर एक शीशी म रख लिया था

यह सब कुछ मैंने चेतन तौर पर उस उपन्यास म डाला था। पर 'यात्री' उपन्यास म महन्त किरपासागर के किसी भी वर्णन म मैंने चेतन तौर पर अपने पिता की याद को नही डाला था। पर जब बरसो बाद मैंने उस उपन्यास को पढा तो जब महन्त किरपासागर की मृत्यु के बाद उपन्यास का नायक उसकी आवाज का अपने मन म ध्यान करता है तो मुझे लगा—यह मैं स्वय अपने पिता की आवाज का ध्यान कर रही थी— उनकी आवाज म कुछ खास तरह का ऐसा था—नदी क जल क समान, हल्का-सा होते हुए भी बहुत भारी और अपने ही जोर से बहता हुआ। कोई पत्थर ककड पत्ता या हाथो का मैल उसम फेंक दे तो उससे

वेपरवाह उसे बहाकर ले जाता या उसे परो में फेंककर उसके ऊपर से गुजर जाता। उनकी आवाज एक सीध में चल जाती थी इद गिद की बातें सुनकर कभी रुकती हुई नहीं लगती थी। साधुओं के डेरा में भी घर-गृहस्थियों की भांति झगडे चमले और निंदा चुगली रचते बसते हैं जान इनके कोना में भी लगते हैं पर उनकी आवाज नदी के वेग के समान, इस सब-कुछ को बहाकर ले जाती थी और इसकी ओर आख भरकर देखती तक नहीं थी। यह आवाज दो तरह की थी—एक भारी गहरी और वेगवती, दूसरी बहुत सूक्ष्म, उदास और पवन की भांति पवन में मिलती हुई

और उपन्यास में महन्त किरपासागर जिस बोल को बार-बार दोहराते हैं याद आया कि वही बोल मेरे पिता के होठों पर हुआ करते थे— मुद्दतें गुजर गयी वेयारो मददगार हुए

महन्त किरपासागर की कहानी का कुछ अंश मैंने चेतन तौर पर अपने पिता के एक मित्र साधु के जीवन से लिया था, पर जब महन्त किरपासागर के स्वभाव का वर्णन किया तो अचेतन तौर पर मुझसे अपने ही पिता के स्वभाव का वर्णन हो गया।

१५ मई १९७३ को जब मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय ने डी० लिट० की आनररी डिग्री दी थी मेरे घर लौटने पर देविन्दर ने अपनी जेब में कुछ छिपाते हुए कहा था दीदी ! आज कुछ मन आयी करने को जी कर रहा है, नाराज मत होना। जवाब में मैंने हसकर कहा था 'भाई तुम्हारे मन में जो भी आएगा अच्छा ही होगा'—और देविन्दर ने जेब से एक रेशमी रुमाल मिसरी और इक्कीस रुपये निकालकर कहा, दीदी ! तुम्हारे पिता या भाई कोई होना तो कुछ न कुछ शगुन करता—यह शगुन उनकी तरफ से

आखें भर आयी और याद आया एक सवाल उपन्यास में जब उपन्यास का नायक अपने पिता की मृत्यु के बाद अपनी भरपूर जवान सौतेली मा का अपने हाथों उसके मन का विवाह करता है और वह जवान लडकी थाली में रोटी डाल कर कहती है— आ ! 'मा-बेटे साथ खाए' तो वह रोटी का पहला ग्रास तोडते हुए कहता है— पहले यह बताओ कि तुम मेरी मा लगती हो या बहन या बेटी ? तो उपन्यास का यह अंश लिखते समय देविन्दर मेरे सामने नहीं था—पर चौदह वर्ष बाद जब देविन्दर ने वह रुमाल, वह मिसरी और वे रुपये मेरी झोली में डाल, मेरे मन में आया हुआ बोल निरा पूरा वही था—'तुम पहले यह बताओ कि तुम मेरे पिता लगते हो मेरे भाई या मेरे पुत्र ?

एक कहानी पिघलती चट्टान मैंने १९७४ के आरंभ में लिखी थी। तब बिलकुल नहीं जानती थी कि मेरे अचेतन मन की यह कौन-सी अभिव्यंजना है। मैंने इसकी पृष्ठभूमि नेपाल के स्वयंभू पर्वत के शिखर पर स्थित एक मंदिर

रखा था जहा एक नवयुवती 'राजश्री' रात के चौथे पहर म जाती है और वहा पहुचकर दूसरी ओर की ढलान की ओर उतरते हुए वह वसीगा नदी के पथ को पहचान लेती है जिस नदी म कभी दो सौ वष पूव उसके वश की एक कुमारी न जीवन स मुक्ति प्राप्त करने का माग खोज लिया था।

राजश्री मन के असमजस म, वही माग चुनती है जो कभी उसके वश की एक कुमारी ने चुना था। साथ ही सोचती है—परा के लिए एक यही रास्ता क्या बना है ?

कहानी आगे बढती है तो राजश्री के मन म एक युग पलटता है। वह स्वय को पहचान जाती है जान जाती है कि किसी एक समय का सत्य हर समय का सत्य नही होता और वह मत्यु के ढलान की ओर से पैर लौटाकर जीवन की चढाई के रास्ते को पकड लेती है।

पूरे दो वष बीत गए। इस कहानी के पात्र के साथ अपने आपको जोडकर कभी भी नही देखा था कि एक रात को अधनिद्रा की अवस्था म, मेरे जीवन का समय चक्र लगभग पतीस बरस पीछे चला गया और मैंने देखा—मैं मुश्किल से कोई बीस बरस की हू गुजरावाला गयी हू, उसी गली उसी घर म जहा कभी मेरे पिता की बहन हाको तहखाने म उतरकर चालीसा काटते हुए मर गयी थी।

कानो म वही आवाज आयी पतीस बरस पहले की जब मुझे देखकर गली की जीवी' नाम की भक्तिन जो पहले तो मुझे देखती रह गयी थी, फिर अपने चकित चेहरे पर हाथ रखकर बोली थी— हाय, मैं मर गयी! बिलकुल वही, वही हाको बसी की बसी '

उस गली म मेरी बूआ हाको के समय की यही एक स्त्री थी जो अभी तक जीवित थी। उसने यह कहा तो मैंने शीशे मे अपने चेहरे को देखकर पहली बार हाको के चेहरे की कल्पना की यू तो अपनी बूआ की सूरत स मेरी सूरत का मिल जाना एक स्वाभाविक बात हो सकती थी पर लगा यह प्रकृति का कोई रहस्य है शायद होनी का सकेत। मैं उस समय मन की गहरी परेशानी से गुजर रही थी। ब्याह हो चुका था, पर मन उखडा उखडा था। अपने चेहरे म हाको का चेहरा देखा तो आखें भर आयी। लगा हाको का अत ही मेरा अत है

वही दिन थे जब मैंने मरना नही, जीना चाहा। तडपकर सोचा— पैरा के लिए एक यही रास्ता क्या बना है?' और फिर तडपकर फैसला किया—मैं हाको की तरह मरूगी नही जीऊगी '

जन्मो की बात नही जानती थी पर सोचा जीवी भक्तिन के कहे अनुसार यदि यह सच भी है कि पिछले जन्म म मैं ही हाको थी तब भी इस जन्म म उस तरह मरूगी नही

पर यह आपबीती मुझे १६७४ म कहानी पिघलती चट्टान' लिखते समय

चेतन तौर पर बिलकुल याद नही थी। मरा अचेतन मन न जाने किस समय ऊपर आकर यह कहानी लिखवा गया और फिर, मेरी आखा से भी अपन आप को चुराता हुआ मन की तहो म उतरकर अलोप हो गया

कुछ घटनाए बहुत ही थोडे समय के बाद रचना का अग बन जाती हैं पर कुछ घटनाओ को कलम तक पहुचने के लिए बरसो का फासला तय करना पडता है। पहली तरह की घटनाओ म मुझे एक याद है जब मैं १९६० म नेपाल गयी थी। लगभग पाच दिन तक रोज शाम के समय किसी न किसी बैंक म कवि सम्मेलन होता था जहा कुछ नेपाली कवि रोज मिल जाते थे। उनम एक कवि थ चढती जवानी म किन्तु बहुत ही गभीर स्वभाव के। मैंने केवल इतना ही जाना था कि वह रोज धीरे स मेरी एक खास कविता की फरमाइश अवश्य करत थ इसस ज्यादा कुछ नही। पर जिस दिन वापस दिल्ली आना था, और कई कवियो के साथ वह भी एयरपोर्ट आए थे और सयोग था कि उस दिन प्लेन एक घटे लेट था प्रतीक्षा के सारे समय में वह मेरा भारी गम कोट उठाए रहे। फिर प्लेन के जान पर जब मैं उनसे कोट लेने लगी तो उन्होंने धीरे से कहा— यह जो भार दिखाई देता है यह तो आप ले लीजिए जो नही दिखाई देता वह मैं लिय रहूगा और मैं बस चौंक सी गयी थी। दिल्ली पहुचकर एक कहानी लिखी हुंकारा —उनके बारे म नही पर यह वाक्य अनायास ही उस कहानी में आ गया।

अब दूसरे प्रकार की घटना जो कलम तक पहुचने में बरसो लगा देती है—उसका एक उदाहरण मेरी कहानी दो औरतें है जिसम एक औरत शाहनी है और दूसरी एक वेश्या शाह की रखेल। यह सारी घटना लाहौर में आखा के सामने होती हुई देखी थी। वहा एक धनी परिवार के लडके का ब्याह था और घर की लडकी वालियाँ गा बजा रही थी। उस परिवार से मामूली-सा परिचय था। उस समय मैं भी वहा थी जब यह पता चला कि लाहौर की प्रसिद्ध गायिका तमचा जान वहा आ रही है। वह आयी—बडी ही छबीली नाज-नखरे स आयी। उसे देखकर एक बार तो घर की मालकिन का रग हल्दी जसा पीला पड गया। पर आखिर वह थी तो लडके की मा—तमचा जान जब गा चुकी तब शाहनी ने सौ का नोट निकालकर उसके आचल म खरात की तरह डाल दिया। इस समय *नाज नखरे वाली हैसियत मिटन जसी हो आयी पर अपना गरूर कायम रखन के* लिए औरतो की उस भरी मजलिस में बोली— रहने दो शाहनी ! आगे भी तो इस घर का ही खाती हूँ और इस प्रकार शाह से नाता जोडकर जमे उसने शाहनी को छोटा कर दिया। मैंने देखा शाहनी औरतो की उस भरी मजलिस में एक बार खिसियानी सी हुई पर फिर सभलकर लापरवाही से नोट का तमचा

अमृता के पिता जब [illegible]

अमृता के पिता सरदार करतारसिंह हितकारी

अमृता १९३८ (स्थान आल इन्डिया रेडियो लाहौर का स्टूडियो)

अमृता और पाच महीने की कन्दला १९४६

अमृता (स्थान: [illegible] लाहौर का स्टूडियो)

अमृता और एक वर्ष का नवराज १९४८

ममता (स्थान जालंधर रेडियो स्टेशन का स्टूडियो)

अमृता १९५०

साहिर और अमृता
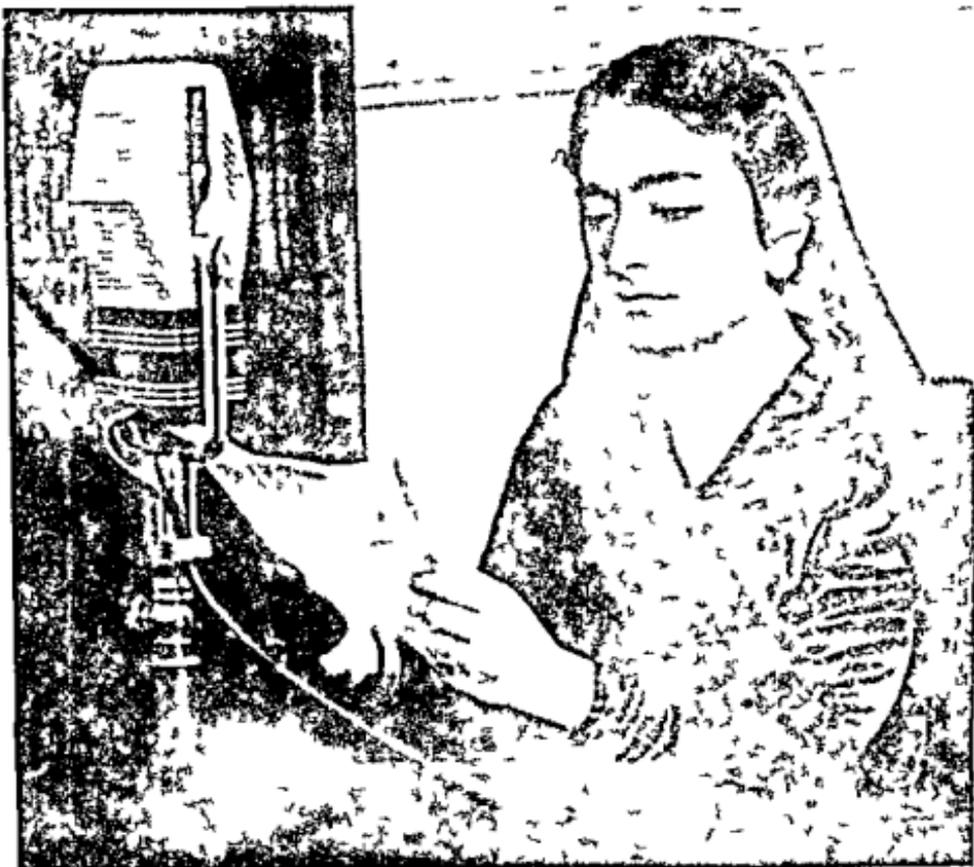
[illegible] रेडियो के चौदह भाषाओं के पहले कवि सम्मेलन के समय

साहित्य अकादमी पुरस्कार के समय १९५६

अमृता (स्थान दिल्ली रेडियो स्टेशन का स्टूडियो)

हंसराज

नवराज

अमृता १९५९

मथुरा १९६०

नेपाल में १९६०

उज़बेकिस्तान की फरगाना वादी में १९६१

मिर्ज़ा तुर्सनज़ादे और अमृता १९६० (स्थान ताजिकिस्तान)

इराकली आबाशीद्ज़े और अमृता १९६६ (स्थान जार्जिया का हवाई अड्डा)

यूगोस्लाविया में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में १९६७

नगरी म १९७०

बल्गारिया म चित्रकार
ग्लानिया बाचेवा का
बनाया हुआ
अमृता का बुत

कल्पना के विवाह के अवसर पर २३ अप्रैल १९७०

कल्पना और उसका पहला
बच्चा कार्तिक
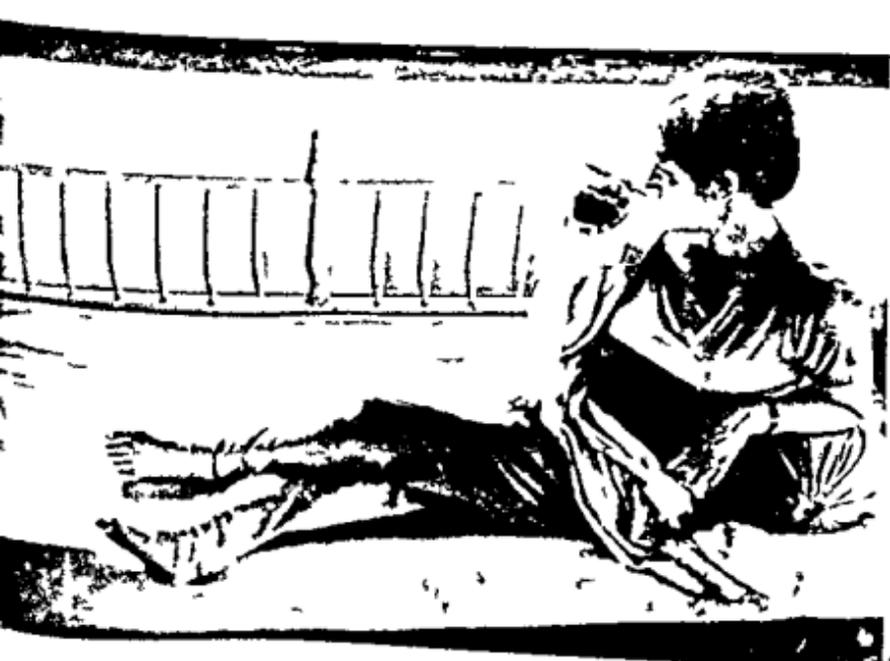
अमृता १९७२

नवराज के विवाह
के अवसर पर
७ फ़रवरी १९७२

दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से मिली डी लिट की डिग्री के समय
१४ मई, १९७३
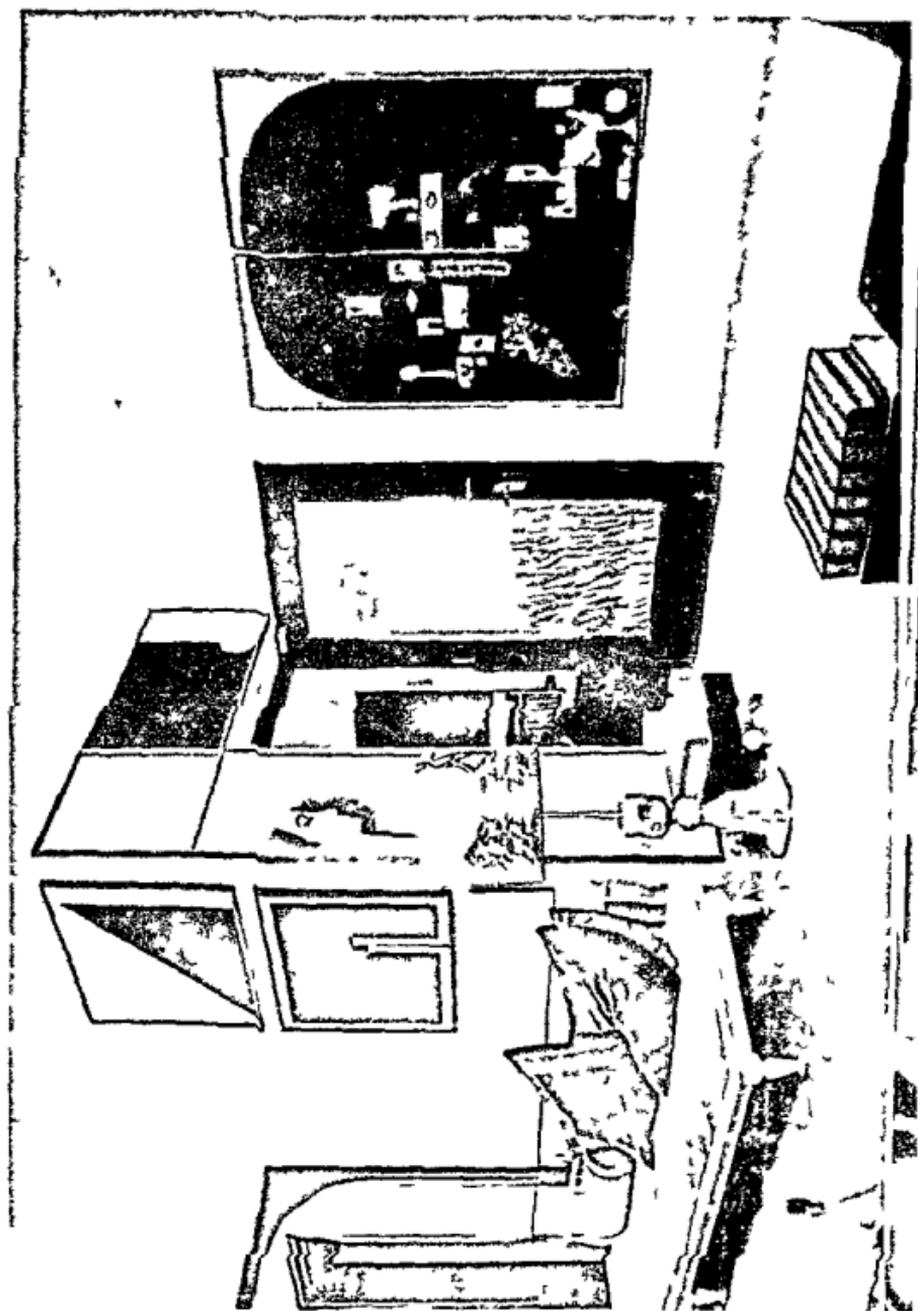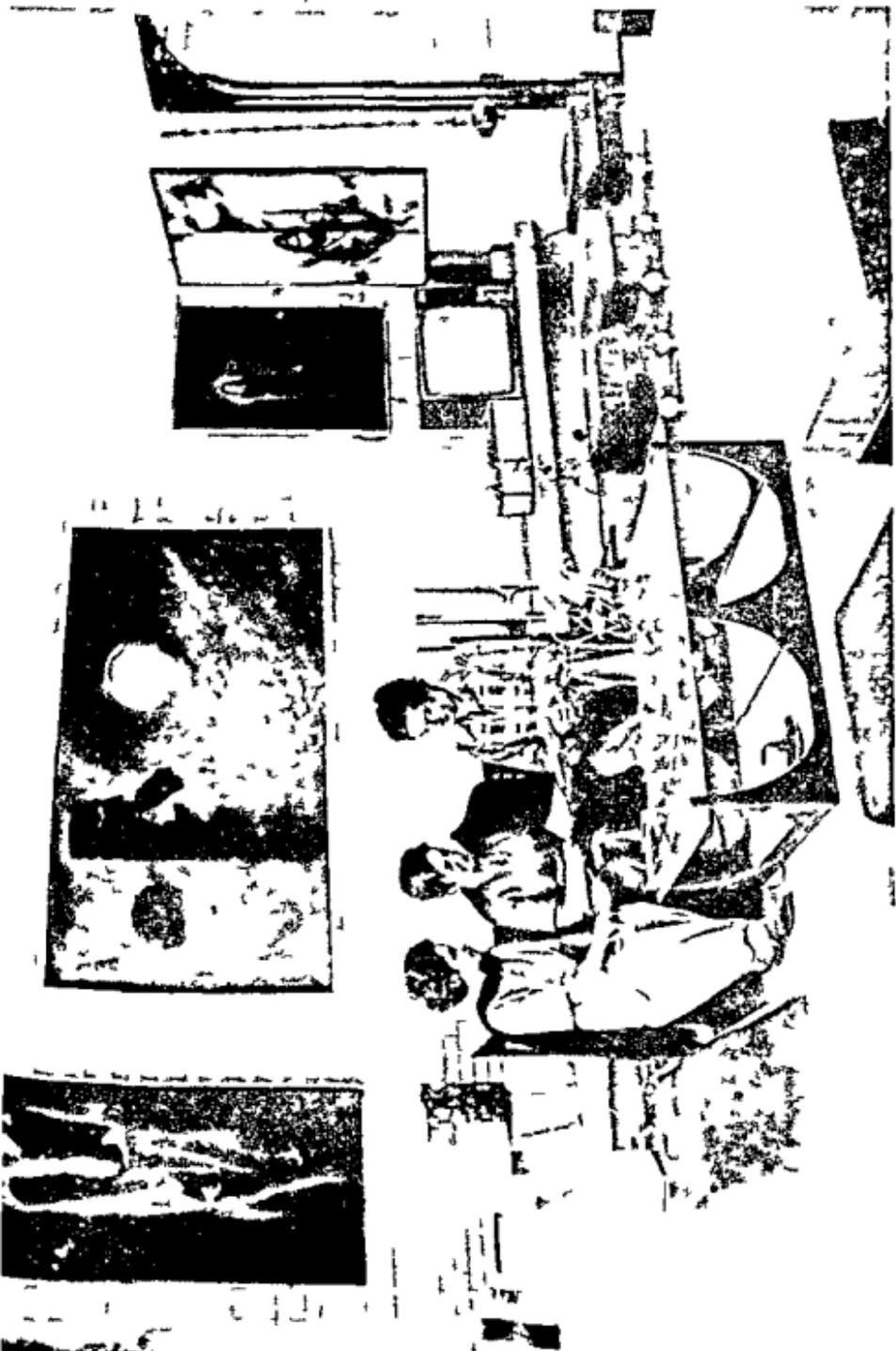
यमुना श्रौर यमराज

यह दो औरतो का अजीब टकराव था, जिसकी पृष्ठभूमि म सामाजिक मूल्य थ। उमका चाहे लाख नवान थी, छबीली थी, कलाकार थी, और शाहनी मानी और इतनी आयु की थी और हर प्रकार से उस दूसरी के सामने साधारण थी, उसक पास पत्नी और मा होने का जो मान था, वह बाजार की सुदरता पर भारी था

पर यह कहानी मैं पूरे पचीस वष बाद लिख पायी।

१९७५ म मेरे उपयास 'धरती सागर और सीपियां' के आधार पर जब कादम्बरी फिल्म बन रही थी तो उसके डायरक्टर ने मुझस फिल्म का एक गीत लिखने के लिए कहा। अवसर वह बताया जब चेतना सामाजिक चलन के खयाल को हाथ स परे हटाकर अपने प्रिय को अपन मन म और तन म हासिल कर लेती है। और इस मिलन और दद के स्थल पर खडी चेतना को सामने रखकर मैं जब गीत लिखने लगी तो अचानक वह गीत सामने आ गया जो मैंने १९६० म इमरोज स पहली बार मिलने पर अपने मन की दशा के बारे म लिखा था। जो दशा मैंने अपन मन पर भोगी थी, लगा, वही अब चेतना को भोगनी है और उस गीत से अच्छा कुछ और नहीं लिखा जा सकता। सो मैं अपने पजाबी गीत को हिन्दी म अनुवाद करने लगी। तब मुझे लगा जसे चेतना के रूप म मैं पन्द्रह बरस पहले की वह घडी फिर स जी रही हू—

अम्बर की एक पाक सुराही, बादल का एक जाम उठाकर
घूट चादनी पी है हमने, बात कुफ्र की की है हमने
कस इसका कज चुकाए माग क अपनी मौत के हाथो
यह जो जिन्दगी ली है हमने बात कुफ्र की की है हमन
अपना इसम कुछ भी नहीं है, राज़े अजल से उसकी अमानत
उसको वही तो दी है हमन बात कुफ्र की की है हमने

नीना मेरे आलना उपयास की कल्पित पात्र थी पर उसे लिखते हुए उसके नैन-नक्श मेरे मन म इस तरह उभर आए थ कि एक दिन वह मेरे सपने म आ गयी। बहुत गुस्से म पहले चुपचाप मेरे पास आकर खडी रही फिर तडपकर कहने लगी तुमने मेरा अन्त इतना दुखान्त क्या बनाया ? क्यो ? अगर मैं जीवित रहती तुम्हारा क्या हरज होता ? तुमने मुझे क्यो मरने दिया ? क्यो ? मैं जीना चाहती थी '

उपयास म एक जगह नीना कहती है मेरी मा भी सुखी न हो सकी वह शायद मैं ही थी पहले जन्म म और अब मैं सुखी न हो सकी दूसरे जन्म म, शायद अपनी पुत्री क रूप म सुखी होऊगी—तीसरे जन्म म ' यह जन्मो की बात मैंने किसी जन्मो म विश्वास क कारण नहीं लिखी थी केवल तीन पीढियो की बात को प्रतीकात्मक रूप म ढाला था। पर यह बात मेरी पाठक लडकियो म स

एक के मन म इतनी गहरी बैठ गयी कि उसने अपने आपको नीना समझ लिया और यह विश्वास भी कर लिया कि वह मरकर तीसरे जन्म म जाएगी तो सुखी होगी वह मुझे पत्र लिखती पर अपने नाम और पते के बिना, केवल इतना ही लिखती मैं आपके उपन्यास की नीना हू —मैं उस इस वहम स निकालना चाहती थी, कि वह इस कहानी म अपनी किस्मत की परछाइ न देखे। पर कमबख्त ने कभी भी मुझे अपना पता नही लिखा। मैं नही जानती उसके साथ ज़िन्दगी म फिर क्या हुआ

इसी प्रकार उपन्यासा कहानियो के कई पात्र पाठका के लिए इतन सजीव हा उठत हैं कि वे पत्रा म मुझे लिखते हैं—वह ऐना वह अलका वह अनीता जहा भी है उसे प्यार देना

'एक थी अनीता' उपन्यास जब उदू म छपा ता हैदराबाद से वश्या घराने की एक औरत ने मुझे पत्र लिखा कि वह उसकी कहानी है। उसकी आत्मा भी उसी प्रकार पवित्र है उसकी जिज्ञासा भी वही है केवल घटनाए भिन्न हैं। और उसने अपना नाम पता बताकर लिखा कि अगर मैं उसकी कहानी लिखना चाहू तो वह कुछ दिना के लिए दिल्ली आ सकती है। मैंने उसे पत्र लिखा पर उसके बाद कभी उसका पत्र नही आया न जाने उस इतनी सवेदनशील औरत का क्या हुआ।

हा एरियल नावलेट की मुख्य पात्रा मेरे पास आकर लगभग डेढ महीने मेरे घर पर रही थी ताकि मैं उसकी जिन्दगी पर कुछ लिख सकू। नावलट लिखकर पहले उस सुनाया था। इस रीडिंग के समय उसकी आखा म कई बार सतोष के आसू आए। इस प्रकार अगर किसी व्यक्ति विशेष पर कहानी या उपन्यास लिखू तो उस पात्र की तसल्ली मेरे लिए कहानी छपने से अधिक जरूरी हाती है। मेरा विश्वास है कि रचना मानव जीवन के अध्ययन के लिए है न कि कुछ लोगा का दुखाने के लिए या उनके बारे म चौंकाने वाली अफवाह फैलाने के लिए जसा कि हमारे कुछ पजाबी लेखक करते हैं।

बुलावा नावलेट मैंने बम्बई के प्रसिद्ध कलाकार फज़ के जीवन पर लिखा था। उन्होने रेस के घोडो पर केवल पसा ही नही लगाया अपना सारा जीवन लगा दिया है। उनकी कला और उनका यह घातक शौक दोना परस्पर विरोधी दिशाए हैं। इसी खीच तान म पडे हुए उनके जीवन के आवारा वर्षों की कथा लिखन की कोशिश की थी। पर लिखकर सबस पहले यह नॉवलेट उन्हे ही सुनाया और उनकी अनुमति लेकर प्रेस म दिया।

इसी प्रकार कई कहानिया हैं। एक किसी देश के राजदूत की बडी प्यारी और उदास पत्नी पर लिखी थी जिसे उसके पढने के लिए पहले अग्रेजी म अनुवाद करवाया और फिर उसकी अनुमति लेकर प्रेस मे दिया। दो-तीन कहानिया मैंने अपनी एक बहुत अच्छी दोस्त की ज़िन्दगी पर लिखी हैं उसकी

ज़िन्दगी के बड़े नाज़ुक वक्त के बारे में—पर छापने से पहले उसे सुनाई उसके कहने के अनुसार शहरों और पात्रों के नाम भी इस तरह बदले कि कोई उसका नज़दीकी रिश्तेदार भी पहचान न सके।

एक कहानी एक विदेशी औरत पर भी लिखी थी—उसमें कहानी का अन्त बन्दता पड़ा था। कहानी में उसकी मृत्यु हो जाती है। पर वर्षों बाद मैं उसके देश गयी तो वह कसकर गले लगकर मिली। उसके पहले शब्द थे, 'देखा, मैं अभी भी ज़िन्दा हूं। कहानी की मृत्यु में से गुज़रकर भी ज़िन्दा हूं।' और उस दिन हम दोनों ने साथ-साथ तसवीरें खिचवाइं। उसने अपने देश में मेरे लिए कई सौगातें खरीदीं।

सच में, मेरे पात्र और उनका मेरे लिए प्यार मेरी असली अमीरी है। मैं नहीं जानती कि जो लेखक अपने पात्रों के दिलों को दुखाकर कहानियां गढ़ते हैं, उन्हें ज़िन्दगी में क्या हासिल होता है।

उपन्यास 'जेबकतरे' जब लिख रही थी तो उसमें जेल में पड़ा हुआ एक पात्र तनवीर एक कविता लिखकर किसी प्रकार जेल के बाहर भिजवाता है और कविता के नीचे अपने नाम के स्थान पर कैदी नम्बर लिखता है—६८६१६।

मैंने यह नम्बर अचेतन रूप से लिखा तो याद आया कि यह गोर्की का नम्बर था जब वह कैद में था जो मैंने मास्को में उसके स्मारक को देखते समय कभी अपनी डायरी में नोट कर लिया था। फिर आगे उपन्यास की कहानी में मैंने उसे चेतन तौर पर बरत लिया

हां, इस प्रकार कभी यह मालूम नहीं होता कि चेतन और अचेतन रचनाएं कब और कहां रिल मिल जाती हैं।

उपन्यास 'जेबकतरे' मैंने अपने युवा होते हुए पुत्र के जीवन के आधार पर लिखा था। इससे पहले एक कहानी लिखी थी 'कहानी दर कहानी' जिसकी घटना यह थी कि एक बार छुट्टियों में होस्टल से घर आए हुए मेरे बेटे ने अपनी एक बंगालिन दोस्त को पत्र लिखा बड़े एहसास के साथ कि इस समय मेरे कमरे में बेथोवन का संगीत है और मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूं, पर तुम्हें पत्र लिखना ऐसा है जैसे कोई अपने ही घर का दरवाज़ा खटका रहा हो उत्तर में उस लड़की का जो पत्र आया वह बहुत साधारण था। शाम का गहरा अंधेरा था जिस समय वह एक कागज़ लिये मेरे कमरे में आया। मैं उस समय तक न उस पत्र के बारे में जानती थी जो उसने लिखा था और न उसके बारे में जो उत्तर में आया था। उसने कहा, मामा, मैंने एक लड़की को एक खत लिखा था पर उसकी समझ में ही नहीं आया। यह आपको सुनाऊं? और उसने मुझे वह खत सुनाया। खत की एक कॉपी उसके पास थी। फिर कहने लगा जवाब में जो खत आया है वह ऐसा है जैसे मौसम का हाल लिखा हो। मैंने पूछा अब उस

और खत लिखना चाहोगे ?' तो वह कहने लगा 'नहीं उसका खत इतना साधारण है पढ़कर लगता है जैसे मैं मुख्य दरवाजे से अन्दर गया और पीछे के दरवाजे से बाहर आ गया।' और मैंने कुछ दिनों बाद इसी छोटी सी बात के आधार पर एक कहानी लिखी थी। पर जब जब उपन्यास लिखा तो उसका क्षेत्र बहुत बड़ा था उसमें यूनिवर्सिटी के होस्टल का जो वातावरण है वह मेरे अपने लड़के के दोस्त हैं जवान हो रहे स्वप्नों से जोंकते हुए भूख भय और समय से फ्लट करते हुए—जीवन को अपने-अपने कोण से देखते हुए और अपनी अपनी अनुभूति की पीड़ा को झेलते हुए

बुनियादी घटनाएं मेरे पुत्र के और उसके मित्रों के जीवन की हैं। पर यह अपने से आगे की पीढ़ी को समझाने का यत्न था। इसमें मैंने अपने आपको चाहे एक दर्शक के समान रखा था फिर भी अचेतन तौर पर इसके अनेक विचारों में समा जाना स्वाभाविक था। जब मैंने इसे लिखकर अपने बेटे को पढ़ने के लिए दिया तो चाहे उससे भी पहले उसके मित्रों ने इसे पढ़ा वे अपना चेहरा पहचानते रहे और मुझे कम्पलीमेंट देते रहे पर जब मेरे लड़के ने पढ़ा कई स्थानों पर बहुत कुशलतापूर्वक लिखने पर कम्पलीमेंट भी दिया पर कहा— अगर यह उपन्यास मैं लिखता तो कुछ और ही तरह लिखता।' यह ठीक है—आखिर मेरे लिए यह एक पूरी पीढ़ी के फासले का लाघने का यत्न था पर फासले का लाघने वाले पैर अपने थे पहली पीढ़ी के इसलिए मेरे समय के आदर्शवाद का उसमें घुल जाना स्वाभाविक था

इस उपन्यास के जिन सविता और रवि का विवाह मैंने विस्तार-सहित लिखा है वे उपन्यास छपने के कई वर्ष बाद मेरे पुत्र से मिलने आए मुझसे भी मिले। वे किताब में छपे हुए अपने विवाह के वर्णन को पढ़कर हंसते रहे और मैं अपने पात्रों को देखती रही अब उनके एक प्यारा-सा बच्चा भी था, उनके घबराकर किये हुए विवाह की परिपुष्टि

खैर अपने पात्रों को इस प्रकार देखना जो एक प्यारा अनुभव है, वह एक अलग बात है। मैं उपन्यास के लेखन काल की बात कर रही थी। इसका विचार उस पत्र में बंधा था जो मेरे पुत्र ने मुझे होस्टल से लिखा था। उपन्यास में यह पत्र पांचवें परिच्छेद के आरंभ में है जिसमें उपन्यास का मुख्य पात्र कपिल पत्र को समाचारपत्र का रूप देता है उसका नाम 'द टाइम्स आफ कपिल' रखता है और समाचारपत्र के जारी होने की वह तारीख लिखता है जो उसके अपने जन्म की तारीख है और इस समाचारपत्र की बिक्री सबसे अधिक जिस शहर में होना है वहां अपनी मां का एड्रेस लिखता है। फिर समाचारपत्र के छह कॉलम बनाता है जिनमें खबरों की शक्ल में मां को पत्र लिखता है

मेरे लड़के का नाम नवराज है। पर उसे प्यार में 'सेला' भी पुकारते हैं। मेरे

पास उसका वह पत्र 'द टाइम्स ऑफ मली' अभी तक रखा हुआ है

वह हास्टल में जब भी छुट्टियाँ में घर आता था, हास्टल की बहुत सी बातें वह विस्तार से सुनाया करता था। उस पत्र के बाद जब वह आया तो मैंने, उपन्यास शुरू करने से पहले उसे पास बिठाकर नोटस लेने शुरू किये

फिर जब उपन्यास शुरू किया, तो एक बार उसने कहा—मामा! आपने अपनी जिन्दगी को नया मोड़ दिया, पर क्या आप जानती हैं हम दोनों बच्चों ने इसके लिए कितना मन्जिली सफर किया है?'

घर टूटता है तो मासूम बच्चे टूटते हुए घर के मलबे को किस तरह अपने शरीर पर झेलते हैं, इसकी पीड़ा मेरे मन में थी। कहा—जैसे गरीब माँ के घर जन्मे बच्चों को माँ की गरीबी भुगतनी पड़ती है, उसी तरह मन की पीड़ा में से गुजरती हुई माँ के घर जन्मे बच्चों को उसकी पीड़ा भी भुगतनी पड़ती है—मां के नैन-नक्शों की तरह '

जानती हूँ—इस पीड़ा को मेरे बच्चों ने भुगता है, पर मेरी लड़की ने सारे समय की लम्बाई में कभी भी मेरे साथ हमदर्दी नहीं छोड़ी पर पुत्र ने कुछ समय के लिए जरूर छोड़ दी थी बचपन से लेकर जवान होने तक के समय में। यह शायद एक के लड़का और एक के लड़की होने का अन्तर था। आज भी मेरी नन्ही सी अनजान-सी बेटी के वे बोल मेरे कानों में हैं। जब नवराज की किसी समय की बरुखी से मैं उदास हो जाती थी तो कंदला कहा करती थी—मामा! आप बन्त मोवा न करें सनी बड़ा हो जाएगा तो अपने आप ठीक हो जाएगा।'

खैर उस दिन मेरे बेटे ने कहा—मामा! इस उपन्यास में आप उस बच्चे की परेशानी लिख सकती हैं जो माँ-बाप का घर टूटने पर वह भुगतता है?'

हाँ पूरी जुरअत के साथ—मैंने कहा, और उपन्यास के अन्तिम भाग में कपिल के मिड नाइट बिजन की शक्ल में उस परेशानी को लिखने की कोशिश की

मेरे मन को केवल उन्होंने दुखाया है जिनका मेरी जिन्दगी से कोई वास्ता नहीं था। उनके साथ केवल एक ही दुखान्त सबंध था कि मैं उनकी समकालीन लेखिका थी। वे न मेरे पाठक थे और न वे जिन्होंने इस पीड़ा में से अपनी अपना मुट्ठी भरनी थी।

कंदला ने जिससे विवाह किया है वह मुझे दीदी माँ कहकर बुलाता है और उसके मन का यह पहला फैसला था कि वह विवाह के समय दूर पास के लोगों की बारात नहीं लाएगा और न किसी बेतुकी बात या हरकत के लिए किसी को कोई मौका देगा। विवाह की पशवश के समय का उसका एक प्यारा-सा जेस्चर मुझे अभी भी याद है। मेरे सिरहाने के पास एक हाम्योपथिक दवा की शीशी पड़ी हुई थी। उसने उसमें से दो चार मीठी गोलियाँ खाकर कहा—बस मुँह मीठा

और खत लिखना चाहोगे ?' तो वह कहने लगा 'नही, उसका खत इतना साधारण है पढकर लगता है जस मैं मुख्य दरवाजे स अन्दर गया और पाछे के दरवाजे से बाहर आ गया। और मैंने कुछ दिना बाद इसी छोटी सी बात के आधार पर एक कहानी लिखी थी। पर जब जब उपन्यास लिखा तो उसका क्षेत्र बहुत बडा था उसम यूनिवर्सिटी के होस्टल का जो वातावरण है वह मेरे अपने लडके के दोस्त हैं, जवान हो रह स्वप्ना से चौंकत हुए भूख, भय और समय से फ्लट करते हुए—जीवन को अपने अपन कोण स देखत हुए और अपनी अपनी अनुभूति की पीडा को झेलत हुए

बुनियादी घटनाए मरे पुत्र के और उसके मित्रो के जीवन की हैं। पर यह अपन से आगे की पीढी को समझाने का यत्न था। इसमे मैंने अपने आपको चाहे एक दशक के समान रखा था फिर भी अचेतन तौर पर इसके अनेक विचारो म समा जाना स्वाभाविक था। जब मैंने इस लिखकर अपने बटे को पढने क लिए दिया तो चाहे उसस भी पहले उसके मित्रा ने इस पढा वे अपना चेहरा पहचानत रहे और मुझे कम्पलीमट दते रहे पर जब मर लडक ने पढा कई स्थाना पर बहुत *कुशलतापूर्वक लिखने पर कम्पलीमेंट भी दिया पर कहा— अगर यह उपन्यास मैं लिखता तो कुछ और ही तरह लिखता। यह ठीक है—आखिर मेरे लिए यह एक पूरी पीढी के फासल को नापने का यत्न था पर फासले को लाघने वाा पर अपने थे पहली पीढी के इसलिए मेरे समय के आदशवाद का उसम घुस जाना स्वाभाविक था*

इस उपन्यास के जिन सविता और रवि का विवाह मैंने विस्तार-सहित लिखा है वे उपन्यास छपन क कई वप बाद मरे पुत्र से मिलन आए मुझस भी मिले। वे किताब म छप हुए अपन विवाह के वणन को पढकर हसते रहे और मैं अपने पात्रा का देखती रही अब उनके एक प्यारा सा बच्चा भी था, उनके बराबर किए हुए विवाह की परिपुष्टि

खर अपन पात्रा का इस प्रकार दखना जो एक प्यारा अनुभव है वह एक अलग बात है। मैं उपन्यास के लिखन-वाल की बात कर रही थी। इसका विचार उस पत्र स बधा था जा मरे पुत्र न मुझ होस्टल से लिखा था। उपन्यास म यह पत्र पाचवें परिच्छेद के आरभ म है जिसम उपन्यास का *मुख्य पात्र कपिल पत्र का समाचारपत्र का रूप देता है उसका नाम 'द टाइम्स आफ कपिल' रखता है और समाचारपत्र के जारी होने की वह तारीख लिखता है जा उसके अपने जन्म की* तारीख है और इस समाचारपत्र की बिक्री सबसे अधिक जिस शहर म होती है, वहा अपनी मा का एजन्स लिखता है। फिर समाचारपत्र के छह कालम बनाता है, जिनम खबरो की शक्ल म मा का पत्र लिखता है

मेरे लडके का नाम नवराज है। पर उसे प्यार स सली भी पुकारत है। मरे

पास उसका वह पत्र 'द टाइम्स ऑफ सनी' अभी तक रखा हुआ है

वह हास्टल से जब भी छुट्टियों में घर आता था, हास्टल की बहुत सी बातें बड़े विस्तार से सुनाया करता था। उस पत्र के बाद जब वह आया तो मैंने, उपन्यास शुरू करने से पहले उसे पास बिठाकर नोट्स लेने शुरू किए

फिर जब उपन्यास शुरू किया, तो एक बार उसने कहा— मामा! आपने अपनी ज़िन्दगी को नया मोड दिया, पर क्या आप जानती हैं हम दोनों बच्चों ने इसके लिए कितना मटली सफर किया है?

घर टूटता है तो मासूम बच्चे टूटते हुए घर के कंकड़ों को किस तरह अपने शरीर पर झेलते हैं इसकी पीड़ा मेरे मन में थी। कहा—'जैसे गरीब मां के घर जन्मे बच्चों को मां की गरीबी भुगतनी पड़ती है, उसी तरह मन की पीड़ा में से गुज़रती हुई मां के घर जन्मे बच्चों को उसकी पीड़ा भी भुगतनी पड़ती है—मां के तन नक्शों की तरह'

जानती हूं—इस पीड़ा को मेरे बच्चों ने भुगता है पर मेरी लड़की ने सारे समय की लम्बाई में कभी भी मेरे साथ हमदर्दी नहीं छोड़ी पर पुत्र ने कुछ समय के लिए ज़रूर छोड़ दी थी, बचपन से लेकर जवान होने तक के समय में। यह शायद एक के लड़का और एक के लड़की होने का अंतर था। आज भी मेरी नन्ही सी अनजान-सी बेटी के वे बोल मेरे कानों में हैं। जब नवराज की किसी समय की बेरुखी से मैं उदास हो जाती थी तो कंदला कहा करती थी— मामा! आप बहुत माथा न करें सली बड़ा हो जाएगा तो अपने आप ठीक हो जाएगा।'

खैर, उस दिन मेरे बेटे ने कहा— मामा! इस उपन्यास में आप उस बच्चे की परेशानी लिख सकती हैं जो मां बाप का घर टूटने पर वह भुगतता है?'

हां पूरी जुरअत के साथ—मैंने कहा और उपन्यास के अंतिम भाग में कपिल के मिड नाइट विज़न की शक्ल में उस परेशानी को लिखने की कोशिश की

मेरे मन को केवल उन्होंने दुखाया है जिनका मेरी ज़िन्दगी से कोई वास्ता नहीं था। उनके साथ केवल एक ही दुखांतक संबंध था कि मैं उनकी समकालीन लेखिका थी। वे न मेरे पाठक थे और न वे जिन्होंने इस पीड़ा में से अपनी अपनी मुट्ठी भरनी थी।

कंदला ने जिससे विवाह किया है वह मुझे दीदी मां' कहकर बुलाता है, और स्वयं मन का यह पहला फैसला था कि वह विवाह के समय दूर पास के लोगों का इकरार नहीं जोड़ेगा और न किसी बेतुकी बात या हरकत के लिए किसी को कोई मौका देगा। विवाह की पशोपश के समय का उसका एक प्यारा सा जस्चर मुझे अभी भी याद है। मेरे सिरहाने के पास एक होम्योपैथिक दवा की शीशी पड़ी थी। उसने उसमें से दो चार मीठी गोलियां खाकर कहा— बस मुंह मीठा

हो गया, शगुन हो गया।' और इस तरह उसने अपने और मेरे मन की हां का जश्न मना लिया। विवाह का दिन कदला का जन्मदिन चुना—२३ अप्रैल, और उसके केक पर लिखा—'ए डेट विद लाइफ और कचहरी जाने के बजाय मजिस्टेट को घर पर बुलाकर विवाह का सर्टिफिकेट ले लिया।

मेरे लडके ने एक गुजराती लडकी से विवाह किया है। विश्वविद्यालय से वह आर्कीटक्चर की डिग्री और अपनी दुल्हन, दोनों जसे एक साथ ले आया था। विवाह से पहले वे दोनो दोस्त थे, और सिफ दोस्त रहने का उन्होंने फसला किया था। लडकी जानती थी कि उसके गुजराती मा-बाप कभी भी किसी पजाबी लडके से उसे विवाह नही करने देंगे, और मेरे लडके का सोचना था— अगर मैं ब्याह करने का फैसला कर लू तो लडकी जरूर करेगी लेकिन मैं फसला नही करूगा। उसके मा बाप बहुत ही अमीर है, और मैं बहुत अमीर लडकी से ब्याह नही करना चाहता।' और वे दोनो सिफ दोस्ती का हक रखते रहे। पर कुछ समय बाद लडकी के पिता गुज़र गए और उसके चाचाओं का सलूक इतना बदल गया कि लडकी अपने भविष्य की ओर से घबरा उठी कहने लगी, मैंने जिन्दगी मे एक ही सच्चा दोस्त पाया है उसे घर की किस मर्यादा के पीछे छोड दू ?' और उसने होस्टल से दो दिन के लिए दिल्ली आकर मुझसे कहा कि आप अपने हाथो मेरा विवाह कर लीजिये।'

मेरे पुत्र के भी यह शब्द थे— मामा ! अगर यह लडकी मेरी जिन्दगी से चली गयी, तो सारी जिन्दगी मेरे मन में इसकी याद रह जाएगी।

सोचती हू—उसकी यह मुहब्बत भी एक वह घटना है जो जिन्दगी की उलझनो का समझने मे उसकी सहायक हुई है और जिसने उसके दृष्टिकोण को बहुत विस्तृत कर दिया है।

विवाह की रस्म करनी थी। यह कैसी भी हो सकती थी। मेरे लिए गुरु ग्रन्थ साहब की मौजूदगी भी उतनी ही पवित्र थी जितनी हवन की अग्नि। यह तो वास्तव में सम्पूर्ण मन की उपस्थिति होती है। मेरे पुत्र ने कहा कि उसे हवन की आग खूबसूरत लगती है। सो, वही सही।

दोपहर के समय लडके को जब विवाह की निशानी देने के लिए एक अगूठी खरीदकर दी, तो उस गुजराती बेटी ने कहा—'मामा ! मुझे भी तो उसे अगूठी देनी है। सो, मैं उसकी भी मा थी, और उसके लिए भी वह अगूठी खरीदी जिसे उसने मेरे बेटे की उगली मे पहनाना था।

हवन के समय ज्योति के किसी बुजुर्ग की जरूरत थी जो कन्यादान करता इसलिए जब पडित ने पिता की हाज़िरी चाही तो इमरोज ने कहा, 'मैं कन्या का पिता हू कन्यादान करता हू '

और नवराज और ज्योति का विवाह हो गया—शायद विश्व के इतिहास मे

अपने ढग का यह एक ही विवाह हो !

कोई छह महीने तक गुजराती माता पिता की ओर स चुप बनी रही, फिर लन्दन से भाई का फोन आया, बहन का, मा का—और कोई एक वप बाद लडकी लन्दन जाकर सबसे मिल आयी। दो वप बाद मा हिदुस्तान आयी। अपनी बेटी के सुख से वह सचमुच सुखी थी। लगभग पद्रह दिन साथ रही। साथ मे भाई भी था जिसने बहन के मनचाहे पति को पहली बार देखा और उसका अच्छा मित्र बन गया।

यह किताबो के नही जिदगी के पृष्ठ हैं पर इन पर लिखा हुआ केवल उन लोगो की समझ म आता है जिन्होंने जिदगी के ववडर अपने शरीर पर झेले हैं और जो हाथा की ताकत केवल अपने मन स लेते हैं।

आजकल बासु भट्टाचाय मेरे और इमरोज के बडे प्यारे दोस्त हैं। वह जब अत्यत गरीबी के दौर से गुजर रहे थे जब उन्होने अपनी जिदगी की एक सुदर वास्तविकता कमरे म बिठाई हुई थी—अपनी पत्नी रिंकी, फिल्म जगत् के बहुत बडे निर्माता बिमल राय की बेटी—जिसे वह बगावत के जोर म अपनी पत्नी बनाकर घर ले आए थे—और दरवाजे के बाहर, दहलीज की परली ओर गरीबी को बिठाया हुआ था उन दिना की बात सुनाते हुए वह कहते हैं—गरीबी थी, पर मैं उसे अन्दर नही आने देता था। वह बाहर बैठी रही। घर मेरा था, मैं अन्दर बुलाता तब वह आती न ऐसे ही कसे आ जाती ?'

सोचती हू—आज यह जो कुछ अपने मन के भीतर का कागजो पर रखकर दिखा रही हू यह केवल उनके लिए है जो ससार की परम्पराओ और कठिनाइया और उदासिया को दरवाजे के बाहर बिठाकर, मन के सच को जीने का साहस कर सकते हैं

कल्पना का जादू

जिदगी म एक ऐसा समय भी आया था—जब अपने हर विचार पर मैंने अपनी कल्पना का जादू चढते हुए देखा है

जादू शब्द केवल बचपन की सुनी हुई कहानियो म कभी काना म पडा था, पर देखा—एक दिन अचानक वह मेरी कोख म आ गया था, और मेरे ही शरीर के मास की ओट म पलने लगा था

यह उन दिना की बात है जब मेरा बेटा मेरे शरीर की आस बना था—१९४६ क अतिम दिना की बात।

जयचारी और रिवाजों में अनेक ऐसी घटनाएँ मिली हुई थीं—कि हिन्दू घरानों में माँ के कमरे में जिस तरह की तसवीरें हों या जिस रूप की वह मन में कल्पना करती हो, बच्चे की सूरत वैसी ही हो जाती है और मेरी कल्पना ने जग दुनिया से छिपकर धीरे से मेरे कान में कहा— अगर मैं साहिर के चेहरे का इस समय ध्यान करूँ तो मेरे बच्चे की सूरत उससे मिल जाएगी '

जो ज़िन्दगी में नहीं पाया था, जानती हूँ यह उसको पा लेने का एक चमत्कार जैसा यत्न था

ईश्वर की तरह सृष्टि रचने का यत्न

शरीर का एक स्वतंत्र कर्म

केवल संस्कारों से स्वतंत्र नहीं लहू मांस की वास्तविकता से भी स्वतंत्र

दीवानगी के इस आलम में जब ३ जुलाई १९४७ को बच्चे का जन्म हुआ पहली बार उसका मुँह देखा अपने ईश्वर होने का यकीन हो गया और बच्चे के पनपते हुए मुँह के साथ यह कल्पना भी पनपती रही कि उसकी सूरत सचमुच साहिर से मिलती है

पर दीवानेपन के अंतिम शिखर पर पर रखकर सदा नहीं खड़े रहा जा सकता पैरों को बैठने के लिए धरती का टुकड़ा चाहिए इसलिए आने वाले वर्षों में मैं इसका ज़िक्र एक परी-कथा की तरह करने लगी

एक बार यह बात मैंने साहिर को भी सुनाई अपने आप पर हँसते हुए। उसकी और किसी प्रतिक्रिया का पता नहीं केवल इतना पता है कि वह सुनकर हँसने लगा और उसने सिर्फ़ इतना कहा— वेरी पूअर टेस्ट !'

साहिर को ज़िन्दगी का एक सबसे बड़ा कॉम्प्लेक्स है कि वह सुन्दर नहीं है इसी कारण उसने मेरे पूअर टेस्ट की बात कही।

इससे पहले भी एक बात हुई थी। एक दिन उसने मेरी लड़की को गोदी में बैठाकर कहा था— तुम्हें एक कहानी सुनाऊँ ? और जब मेरी लड़की कहानी सुनने के लिए तैयार हुई तो वह कहने लगा—'एक लकड़हारा था। वह दिन रात जंगलों में लकड़ियाँ काटता था। फिर एक दिन उसने जंगल में एक राजकुमारी को देखा, बड़ी सुन्दर। लकड़हारे का जी किया कि वह राजकुमारी को लेकर भाग जाए '

फिर ?' मेरी लड़की कहानियों के हुंकारे भरने की उम्र की थी इसलिए बड़े ध्यान से कहानी सुन रही थी।

मैं केवल हँस रही थी कहानी में दखल नहीं दे रही थी।

वह कह रहा था— पर वह था तो लकड़हारा न वह राजकुमारी को सिर्फ़ देखता रहा दूर से खड़े-खड़े और फिर उदास होकर लकड़ियाँ काटने लगा। सच्ची कहानी है न ?

'हा, मैंने भी देखा था।' न जाने बच्ची ने यह क्या कहा।

साहिर हँसते हुए मेरी ओर देखने लगा—'देख लो, यह भी जानती है।' और बच्ची से उसने पूछा 'तुम वहीं थीं न जंगल में ?'

बच्ची ने हाँ में सिर हिला दिया।

साहिर ने फिर उस गोद में बैठी हुई बच्ची से पूछा—'तुमने उस लकड़हारे को भी देखा था न ? वह कौन था ?'

बच्ची के ऊपर उस घड़ी कोई देव वाणी उतरी हुई थी शायद, बोली—आप

साहिर ने फिर पूछा—'और वह राजकुमारी कौन थी ?'

'मामा।' बच्ची हँसने लगी।

साहिर मुझसे कहने लगा—'देखा, बच्चे सब कुछ जानते हैं।'

फिर कई वर्ष बीत गए। १९६० में जब मैं बम्बई गयी तो उन दिनों राजेन्द्र सिंह बेदी बड़े मेहरबान दोस्त थे। अक्सर मिलते थे। एक शाम बैठे बातें कर रहे थे कि अचानक उन्होंने पूछा, प्रकाश पंडित के मुँह से एक बात सुनी थी कि नवराज साहिर का बेटा है

उस शाम मैंने बेदी साहब को अपनी दीवानगी का वह आलम सुनाया। कहा—यह कल्पना का सच है, हकीकत का सच नहीं।

उन्हीं दिनों एक दिन नवराज ने भी पूछा—उसकी उम्र अब कोई तेरह बरस की थी, 'मामा ! एक बात पूछूँ, सच-सच बताओगी ?'

'हाँ।

'क्या मैं साहिर अंकल का बेटा हूँ ?'

नहीं।

पर अगर हूँ तो बता दो ! मुझे साहिर अंकल अच्छे लगते हैं।'

हाँ बेटे ! मुझे भी अच्छे लगते हैं, पर अगर यह सच होता तो मैंने तुम्हें जरूर बता दिया होता।

सच का अपना एक बल होता है, सो मेरे बच्चे को यकीन आ गया।

सोचती हूँ—कल्पना का सच छोटा नहीं था, पर वह केवल मेरे लिए था, इतना कि वह सच साहिर के लिए भी नहीं।

लाहौर में जब कभी साहिर मिलने के लिए आता था तो जैसे मेरी ही खामोशी में से निकला हुआ खामोशी का एक टुकड़ा कुर्सी पर बैठता था और चला जाता था

वह चुपचाप सिर्फ सिगरेट पीता रहता था, कोई आधा सिगरेट पीकर राखदानी में बुझा देता था, फिर नया सिगरेट सुलगा लेता था। और उसके जाने के बाद केवल सिगरेटों के बड़े-बड़े टुकड़े कमरे में रह जाते थे।

कभी एक बार उसके हाथ को छूना चाहती थी, पर मेरे सामने मेरे ही संस्कारो की एक वह दूरी थी जो तय नही होती थी

तब भी कल्पना की करामात का सहारा लिया था।

उसके जाने के बाद मैं उसके छोड़े हुए सिगरेटो के टुकडा को सभालकर अलमारी म रख लेती थी, और फिर एक एक टुकड़े को अकेले बठकर जलाती थी और जब उगलिया के बीच पकडती थी तो लगता था जसे उसका हाथ छू रही हू

सिगरेट पीने की आदत मुझे तब ही पहली बार पडी थी। हर सिगरेट को सुलगात हुए लगता कि वह पास है। सिगरेट के धुए म जसे वह जिन की भाति प्रकट हो जाता था

फिर वर्षों बाद अपनी इस अनुभूति को मैंन एक थी अनीता' उपयास म लिखा। पर साहिर शायद अभी तक मेरे सिगरेट के इस इतिहास को नही जानता।

सोचती हू—कल्पना की यह दुनिया सिफ उसकी होती है जो इस सिरजता है और जहा इसे सिरजने वाला ईश्वर भी अकेला होता है।

आखिर जिस मिट्टी स यह तन बना है उस मिट्टी का इतिहास मेरे लहू की हरकत म है—सष्टि की उत्पत्ति के समय जो आग का एक गोला सा हजारो वष जल म तरता रहा था उसम हर गुनाह को भस्म करके जा जीव निकला वह अकेला था। उसम न अकेलेपन का भय था, न अकेलेपन की खुशी। फिर उसने अपन ही शरीर को चीरकर—आधे को पुरुष बना दिया आधे को स्त्री—और इसी म से उसने सष्टि रची

ससार का यह आदि कम मात्र मिथ नही है न केवल अतीत का इतिहास —यह हर समय का इतिहास है—चाहे छोटे छाटे मनुष्यो का छोटा छाटा इतिहास

मेरा भी

एक लेखक की ईमानदारी

नेपाल के नेवारी लेखक सायमी धूसवा जब दिल्ली म अपनी एम्बेसी के कल्चरल सेक्रेटरी बनकर आए कुछ ही मुलाकातो म लगा कि उनक अतर का लेखक उनके डिप्लोमटिक ओहदे से बडा है। उनके अतर का यह विरोधाभास उनके लिए सुखकर नहीं था—यह और अपनी अय निजी उलझनें उहोने एक दास्त की

तरह मेरे साथ बाटी। जब भी परेशान होत मुझसे मिलने चले आते, नही तो फोन जरूर करते। खर एक दिन मैंने उनकी बिलकुल निजी एक उलयन के बारे म एक कहानी लिखी— अदालत'। उन दिनो मैं हिदी म अपनी कहानिया की एक किताब कम्पाइल कर रही थी 'पजाब से बाहर के पात्र' और मैंने इस किताब के लिए जो अठारह कहानिया चुनी थी, उनम से एक यह 'अदालत' भी थी। किताब प्रेस म चली गयी और मैंन यह खबर भी घूसवा साहब को दे दी। हर कहानी के नीचे उसका पात्र जिस देश का था उस देश का नाम दिया था। सो, 'अदालत' कहानी के नीचे नेपाल का पात्र लिखा हुआ था। घूसवा ने मुझसे कहा कि कहानी के नीचे मैं नेपाल शब्द को काटकर कुछ और लिख दू नही तो एक डिप्लोमट होन के नात उन्हे मुश्किल का सामना करना पडेगा। मैं यह कभी गवारा नही कर सकती थी कि उ ह कोई तकलीफ हो इसलिए उनके कहन के अनुसार नपाल की जगह आसाम लिखवा दिया। किताब छप गयी। उन्होंने भी देखी। और मुझे एक नोट लिखकर दिया कि मैं जब अपनी जीवनी लिखू तब उनका यह नोट उसम जरूर शामिल कर ल। वह नोट है—'यह कहानी घूसवा की है। पर सास्कृतिक सहचारी एक माननीय, इतना बुज़दिल और कायर है कि इस कहानी को अजनबी बनाने के लिए अपन देश नेपाल को भारत का एक राज्य आसाम बनाने म उसने हामी भर दी।

१६ ११ ७३ घूसवा सायमी'

उस दिन घूसवा मेरी दष्टि म और भी ऊचे हो गए। यह उनके अतर के लेखक की ईमानदारी का आग्रह था। मैंने आदर से सिर झुका लिया।

इस कहानी का उन पर गहरा असर था। उन्होंने अपनी पत्नी को भी यह कहानी सुनायी और अपनी दोस्त लडकी का भी। एक बेचैनी के साथ इस कहानी को बार बार पढ़ते रहे। जब तीन बार पढ चुके तो उन्हें एक बेचन सपना आया और वह उन्होंने लिखकर मुझे दे दिया। वह सपना था—

'न जाने सबेरा था या सध्या थी आकाश उजाले और अधेरे के मेल म फला हुआ था। मैं एक नदी की ओर खिचा चला जा रहा था। इस नदी को मैं प्रति-दिन पार कर लेता था, पर उस दिन इस नदी के तट पर अपनी एक प्रेमिका को जो विवाहित थी और बच्चो की मा थी देखकर घबरा सा गया। उस नदी को पार करने का मुझे साहस नही हुआ। शायद अचेतन मन म, डूब जाने का भय समा गया था। मैं नदी के किनारे किनार चलन लगा। पर उस समय सब ओर रेत ही रेत दिखाई देन लगी। उस रेतीले स्थल म दो तम्बू लगे हुए थे। मेरी आखो के सामने तम्बू के अदर का दश्य फल गया। मैं देखता हू कि इसम एक पुरुष है, जिसे मैं भली भाति पहचानता हू, जिसके भाव और विचार एक यत्र की

भाँति मेरे अंदर ट्रांसमिट हो जाते हैं। उसके सामने तीन तरह के वस्त्र पहने हुए पर एक ही चेहरे की तीन युवतियां खड़ी हुई हैं। पुरुष परेशान सा हो गया, क्योंकि उनमें से एक उसकी प्रेमिका थी। यह कैसी छलना है? वह इस चिंता में डूब गया। उसके आश्चर्य को देखकर उनमें से एक की आंखों में कम्पन हुआ, और वह आगे बढ़कर उस पुरुष की बांहों में आ गयी। ठीक इसी समय दूसरे तम्बू में से एक व्यक्ति क्रोध से बोलता हुआ आया और उस लड़की को बुरा भला कहने लगा—'तू इस बंधन में क्या बंध रही है? यह पुरुष तो विवाहित है यह तो एक भंवरा है।' लड़की ने तुरन्त उत्तर दिया—'मैं यह सब कुछ जानती हूं, फिर भी इसे अपना रही हूं।' इतने में देखता हूं कि दूसरे तम्बू से आए हुए व्यक्ति का सिर धड़ से गायब हो गया। पहले पुरुष ने उस लड़की को सोत्साह अपनी बांहों में कस लिया—और उस समय अचानक मुझे लगा कि मैं जो अदृश्य हूं, और वह जो सिरहीन व्यक्ति है और वह पुरुष जो पूर्ण रूप से वहां था तीनों मुझमें समाए जा रहे हैं। अचानक आंख खुली तो देखता हूं कि अमृता प्रीतम का कहानी संग्रह 'एक शहर की मौत' मेरे पास खुला हुआ पड़ा है जिसकी एक कहानी 'अदालत' मैं तीसरी बार पढ़ते पढ़ते सो गया था।

१८ ११ ७३ —घूसवा सायमी'

यूं तो अपनी हर कहानी के पात्र के साथ मेरा साझा है कहानी लिखते समय मैं उसकी पीड़ा अपने दिल पर झेलती हूं उसकी होनी कुछ देर के लिए मेरी होनी बन जाती है और इस प्रकार यह साझा शाश्वत का एक टुकड़ा बन जाता है परन्तु घूसवा जैसे पात्र मुझ में केवल प्यार और सहानुभूति ही नहीं अपने लिए आदर भी जगा लेते हैं।

घोर काली घटा

अचानक—एक दिन एक कविता लिखी गयी—

अज्ज शल्फ उत्ते जिन्निया किताबां सन
ते जिन्निया अखबारां
ओह इक्क दूजी दे वर्के पाड़ के जिल्दां उधेड़ के
कुज्ज ऐस तरहां लड़ियां
कि मेरियां सोचां दे शीशे कोड़ कोड़ टुटदे रहे
मुल्कां दे नक्शे ते सारियां हृददां सरहृददां

इक्क दूजे नू वाहा ते लत्ता घरीक के सुटद रहे
ते दुनिया द जिन वी वाद सन एतकाद सन
थोह सारे दे सारे इक्क दूजे दा मघ घुटदे रह
घमसान दी लडाइ अत्ता दा लहू डुनया
—पर किडडी अचरज घटना
कि कुज्झ किताबा अखबारा, वाद त नक्शे अजहे सन
जिन्हा दे जिस्म विच्चो—
सुच्च लहू दी थावें इक्क काला जहर वगदा रिहा [१]

लगा, उदासी बूद-बूद करके इकट्ठी होती रही थी और उस दिन घाग काली घटा की भाति मेरे सिर पर छा गयी थी। यह अपने समय की निम्न स्तर की पत्रकारिता और समकालीनो की बतकहिया से लेकर, दूर दूर तक मजहब, समाज और राजनीति की उन हरकता तक फली हुई थी जिनकी नसो मे लाल खून की जगह काला जहर हरकत मे होता है

यह इतनी पीडा भी शायद इसीलिए थी क्याकि यह कागज और यह अक्षर मैंने दुनिया म सबसे ऊची अदब की जगह पर रख हुए हैं यहा तक कि प्रतीत हुआ—७५१ म जब चीन के लागा न समरकन्द पर आक्रमण किया और हार गए, ता उनके कुछ लोग अरबो के युद्ध बन्दी बने। उनम से जो कागज बनान की कला जानते थ उनसे अरबा न वह कला सीखकर पहली बार कागज बनाया और

---

१ आज शल्फ पर जितनी किताबें थी
और जितन अखबार
व एक दूसरे के पन्न फाडकर जिल्दें उधेडकर
कुछ इस तरह लड़े
कि मरे मोचो के शीशे करड करड टूटत रहे
मुल्का क नक्शे और सारी हदें-सरहदें
एक दूसर का हाथा और पावा स घसीटकर फेंकते रहे
और दुनिया के जितन भी वाद थे विश्वास थे
वे सब के-सब एक दूसर का गला घाटत रह
घमासान का युद्ध—लहू की नदिया बही
पर कसी अचभे की घटना
कि कुछ किताबें, अखबार, वाद और नक्श एस थे
जिनके शरीर म से—
शुद्ध लहू की जगह एक काला विष बहता रहा

उस पहले कागज पर जिस हाथ ने पहली कविता लिखी थी, उस हाथ का कम्पन आज भी मेरे हाथ म है

ओ खुदाया

एक और कटु अनुभव

मित्रा और परिचिता की धीरे धीरे अपने से दूर होते देखना, या स्वय उदास होते देखना, एक बहुत कठोर अनुभव है, पर जिंदगी के इस रास्ते पर भी चलना होता है—चली हू

जिन समकालीना से—एक ही ढग का अनुभव बार-बार हुआ—शाखा के वक्षो से धीरे धीरे अर्थों के पत्ते झडने के समान—दलीप टिवाना उन समकालीना म नही है।

बहुत वर्ष पहले, जब भी मिलती थी लगता था एक खुलूस है—पर साथ ही लगता था भीतर से कुछ लेन देन नही होता। फिर कभी छठे छमासे उसका पत्र आने लगा, तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह पत्र कभी मुट्ठी भरकर कुछ दे जाता था मुट्ठी भरकर कुछ ले जाता था। कभी भेंट भी हो जाती थी, पर फिर लगता मन के परो के आगे एक फासला-सा है जो तय नही होता और लगता था, यह जहा जो कुछ खडा हुआ है शायद सदा खडा रहेगा एक दूरी पर।

सोचा करती थी—ठीक है यह भी बहुत है। अगर कोई वस्तु जितनी दूरी पर है उतनी ही दूरी पर रहे टिक सके तब भी बहुत है। पास नही आ सकती न सही और दूर जाने से ही बच जाए।

पर एक दिन अचानक दलीप का पत्र आया एक रहस्य की गाठ मे बाधकर—एक बात है मैं चाहती हू आज से तीन दिन बाद बुधवार को आप मेरे पास हो। सवेरे की पहली गाडी से आ जाइए मैं स्टेशन से ले आऊगी।' और मैंने पत्र पढकर सूटकेस मे कपडे रख लिये। न कुछ पूछने का समय था न पूछने की आवश्यकता शायद उसी प्रकार जसे उसे कुछ बताने की आवश्यकता अनुभव नही हुई। और फिर मगलवार को उसका एक्सप्रेस पत्र आया—अभी आने की आवश्यकता नही है। फिर जब होगी लिखूगी'। और मैंने पत्र पढ सूटकेस म से कपडे निकाल लिये।

फिर किसी पत्र म उसने रहस्य की गाठ नही खोली न जाने वह कसा बुधवार था उस दिन क्या होना था और उसे मेरी आवश्यकता क्या थी। पर अपने मन की इतनी जानकारी ही काफी थी कि उस जसा बुधवार अगर फिर कभी आ

जाए और वह मुझे फिर पत्र लिखे, तो मैं फिर सूटकेस मे कपड़े डाल लूगी

मुझे दलीप टिवाना की कहानिया कभी खास नही लगी था। उनम किया गया मुहब्बत का वणन मुझे उस गोल स भले से पेपरवेट जमा लगता था जिसे कुछ कागजो पर रखकर उन्ह बिखरने या गिरने से बचाया जा सकता हो पर जिसकी किसी नोक मे चुभने की शक्ति न हो। उन कहानियो म किसी तिकोने पत्थर को गल से नीचे उतारने वाला दद नही होता था। पर यह विश्वास अवश्य था कि यह जो कुछ दलीप कागजो पर उतारती है यह असली दलीप नही है यह उसका सहमा हुआ साया है और मैं एक 'गुच्छा' सी होकर बैठी हुई उसकी आकृति के अगो का अनुमान सा लगाया करती थी

फिर १९६९ म उसका उपन्यास छपा—'यह हमारा जीवन', तो लगा, मेरा अनुमान गलत नही था, सिकुडकर बठी हुई दलीप ने इस उपन्यास म अगडाई सी थी और उसके भरपूर जवान एहसास का अग-अग चमक उठा था—पैरो की विवशता, आखो के आसू छाती का रोप और माथे का चिन्तन

एक दिन अचानक उसका पत्र आया—मेरे लिए नही, इमरोज के लिए कि उससे कहना 'नागमणि के टाइटिल पर तुमने जैसी लडकी बनाई है मैं दुआ मागती हू कि ईश्वर मुझ अगले जन्म म वैसी ही लडकी बना दे ' और पत्र म मैंने दलीप के होठ फडकते हुए देखे और देखा—उसके होठो पर एक हसरत थी जो जमी हुई पपडी की तरह टूटना चाहती थी

मुझे उसकी खामोशी भी स्वीकार थी, और उसके बोल भी

फिर एक रात के लिए वह दिल्ली आयी रात अधेरे से गाढी-सी हो रही थी। वह मेरे एक कमरे म फश पर बिस्तर बिछाकर अलसाई सी बैठी हुई थी, और मैंने उसके सामने बैठकर एक रजाई का सहारा लगाया हुआ था कि अचानक उसके मुह स निकला—'कई लोगो को तो ईश्वर कही रखकर भूल जाता है पर मैं खुद ही अपने आपको कही रखकर भूल गयी हू—अब मैं यह भी नही जानती कि मैं कहा हू ? जो करता है—कोई हो जो मेरा अपना-आप खोज कर मुझे दे जाए '

उस दिन पहली बार मैंने उसम बेबाकी देखी, ऐसी बेबाकी, जिसके पीछे विश्वास होता है। लगा, शायद यह विश्वास उसे उसके उपन्यास की सफलता की देन है

वह कह रही थी ईश्वर जब अपना भडारा बाटने लगा था, तो न जाने मेरे हिस्से की थाली वह मेरे आगे रखनी भूल गया या मेरे आगे रखी हुई थाली को जल्दी स किसी औरने उठा लिया पर मैं भूखी रह गयी बस मैंने यह सोच लिया है कि या तो सदा भूखी रहूगी, या अपने हिस्से की थाली म खाऊगी मुझसे कोई निवाला किसी थाली से और कोई किसी थाली से नही खाया

जाता '

मैं उसके मुह की ओर देखने लगी तो वह हस पडी— मेरी मा के पाच बेटिया हुई। सबसे पहली मैं थी। मैं मा से कहा करती हू कि तुमने मुझे जन्म देकर लडकिया बनाने का ढग सीखा, क्योंकि मेरी बाकी चारो बहनें सुन्दर है '

वह हस रही थी पर मुझे हसी नहीं आयी। कहा— पर एक ढग जो उसे सिर्फ पहली बार आया, फिर से उस तरह नही आया।'

मेरा ध्यान उसके मानसिक सौदर्य की ओर था और उसका केवल शारीरिक सुदरता की ओर। पर थोडी ही देर बाद उसका ध्यान उधर से हट गया और उसकी आखें अपने अतर की ओर देखने लगी, और वह कहने लगी— अकेली औरत को लोग बे मालिक की खेती के समान समझते है चलो भई डगर चरा लाए कौन-सा किसी न कुछ कहना है '

और उसकी हसी म रोष मिश्रित हो गया मुझे कोई तो ऐसा लगता है जसे अभी-अभी लोमडी से आदमी बनकर आया हो और चालाकिया चलाता हो कोई ऐसा लगता है जसे अभी अभी गीदड से आदमी बना हो और मरे सामने कुछ हो, अपने घरवाले के या घरवाली के सामने कुछ और हो आदमी हैं ही कहा ? एकदम हिप्पोक्रिटस दोस्ती करने के लिए खुशामदें करते है पर साथ ही यह सोचते हैं कि उन्हे कोई सामाजिक मूल्य न देना पडे मैं जूठी थाली म से कुछ नही खा सकती भूखी रह लूगी लेकिन जूठी थाली म स कुछ नही खाऊगी

दलीप के चेहरे पर लाली झलक आयी उसके सिकुडे हुए से साथ ने उपन्यास म अगडायी ली थी पर उस घडी वह सारी की सारी मन की नदी से नहाकर निकली हुई मालूम पडती थी सुलफे की लपट की तरह उस दिन बात करते और चाय पीते हुए जो रात गुज़ारी उसे मैंने बाद म फ्री जोन म एक रात के शीर्षक स लिखा।

जानती थी—वह जब छोटी थी तब उस सपने बुनती हुई के हाथो से ज़िन्दगी ने सलाइया छीन ली थी और उसके सपने उधड गए थ पर जब १९७२ का साल आया लगा—ज़िन्दगी अपने कजूस बरसो का उलाहना उतारने के लिए बहुत उदार हो गयी है एक साथ तीन हाथ उसकी ओर बढे उसका हाथ पकडने के लिए। एक शोहरत का हाथ था जिसने उसके कलम को अकादमी का अवार्ड दिया और मुसकरा पडा। और दूसरे—दो मर्दों के हाथ थे जो उसका साथ माग रहे थे।

दलीप ने मुझे पटियाला से आवाज दी, मैं गयी तो देखा ज़िन्दगी की इस उदारता को हाथो से छूने के लिए उसके कापते हुए हाथ आगे भी बढ रहे थ, और आगे बढने से घबरा भी रहे थे।

उन दोनो म से एक को दलीप बरसो से जानती थी और दूसरे को सिर्फ कुछ

महांतो मे। अजीब संजोग था कि जिस वह बहुत जानती थी, उस मैं भी कुछ जानती थी, और जिसे वह थोड़ा-सा जानती थी उस मैं बिलकुल नहीं जानती थी—पर उसके हाथ उस ओर बन रहे थ जिधर उसका भी जाना पहचाना नहीं था।

मैंने एक दो बार मन की स्पष्टता के लिए कुछ तर्कों का सहारा लिया, पर देखा—तर्कों स भी आगे कहीं कुछ था जो सोती जागती दलीप को बुला रहा था। बुलावा उसने न जान कैसे सुना था कि उसके कान मन्त्र मुग्ध से लगते थ—इतन कि तक सुनाई नहीं देत थे। मैं चुपचाप उसके पास खड़ी हो गयी उसके साथ। यह समय शायद कुछ कहने का नहीं था यह केवल उसके साथ खड़े होने का था।

उसने कहा—'एक छोटी सी रस्म करनी है पर पटियाला मे नहीं।'

उत्तर म यही कह सकती थी, कहा—'तुम्हारा घर सिर्फ पटियाला म ही नहीं दिल्ली म भी है।'

उस दिन वह अपने घर से मेरे साथ अपनी यूनिवर्सिटी तक आयी। वहां उसे उससे मिलना था जिसके खयालो से वह भरी हुई थी। और फिर वहां से ही मुझे दिल्ली लौटना था

यूनिवर्सिटी के बाहरी गेट के पास पहुचकर वह मन के सेंक से लाल सी हो गयी, और फिर अचानक कई शकाए उसके मन पर काले पखो की तरह आ घिरीं और वह घबराकर कहने लगी—'नहीं, अब मैं ऐसी ही ठीक हू अब बहुत देर हो गयी है वह मुझसे उम्र म छोटा है'

पर वह जब अन्दर कमरे म जाकर उसे बाहर बुला लायी, उसके मन का सेंक फिर एक लाल रग की तरह उसके चेहरे पर पुत गया।

बालो को वह हसकर सवारती और बाधती है लेकिन उस दिन उसके बौराए हुए से बाल उड रहे थे। वह एक हाथ स बालो की लट को सभालती थी, और दूसरे हाथ से जिन्दगी के अचम्भे को

वहा से धीरे धीरे गाड़ी चलाते, और बातें करते हम राजपुरा तक आ पहुचे। इस सारे रास्ते म उस ने दलीप का हाथ अपने हाथ म लिये रखा था इसलिए मैंने हसकर कहा—'इसी तरह बैठे रहो! अभी चार घटे म दिल्ली पहुच जाएगे।'

दलीप बोली—'नहीं आज नहीं, दस पन्द्रह दिन म जब अवार्ड लेने के लिए दिल्ली जाऊगी तब'

दोनो वहा राजपुरा उतर गए और मैं दिल्ली आ गयी। दिल्ली म मैं अकेली थी तर्कों का हाथ से परे करने वाली दलीप मेरे पास नहीं थी, इसलिए व तर्क मेरे गिर्द घिर गए और घबराकर मेरा जी किया—दलीप को फिर एक बार वे सब तर्क दू।

एक फोन नम्बर मेरे पास था दलीप के पड़ोसिया का। रहा न गया, रात को वह नम्बर मिलाया दलीप को फोन पर बुलाया और कहा— एक बार फिर सोच लो, दलीप! उस दूसर को '

लगा—मेरी आवाज उसके कानो को छूकर इधर मेरे पास ही लौट रही थी, भले ही उसने तब कहा था—'अच्छा सोचूगी । पर जान लिया उसन जो सोच लिया है उससे अलग अब वह कुछ नही सोचेगी।

अपन आपको तक दिया— उस दूसर को मैं कुछ जानती हू शायद इसीलिए मैं इस तरह सोच रही हू—यह जानना ही शायद वह पासग है जो उस पलडे को भारी कर रहा है '

सो मान लिया—जो दलीप चाहती है वही ठीक है।

३० माच को दलीप को अवाड मिलना था, वही अवाड उसके विवाह की सौगात बन गया। सध्या का समय पूजा और हवन की सामग्री स महका हुआ था। कन्यादान के लिए इमरोज न हाथ आगे किया और भाई की जगह मेरे बेटे ने खडे होकर दलीप का पल्ला थमाया।

दलीप को वह घटना याद थी—मरे बेटे के विवाह वाली, जब उसकी गुजराती दुल्हन के कन्यादान के समय उस खाली जगह को भी इमरोज न भरा था। आज जब दलीप की जिन्दगी की खाली जगह पर भी इमरोज खडा हो गया तो दलीप ने उसे अजमी बेटियो का बाबुल कहकर मेरे रिश्ते से नही सीधे अपने रिश्ते स उससे सबध जोड लिया।

तीन दिन बाद दलीप को उसके पति के साथ भेजते समय मन इस तरह भर आया जसे सगी मा के या सगी बहन के मन मे कुछ घिर आता है। और उस घडी मैंने पहली बार 'उसे' एक तगडे मद के रूप मे देखा, जब उसने कहा— अब आप लोग कोई चिन्ता न करें'—सचमुच उस घडी लगता था कि वह दलीप से अधिक आयु का हो गया है।

यह मन की आयु किस हिसाब स घटती-बढती है—पकड म नही आता। इमरोज भी कई बार मेरे बावन वर्षों के दो को पाच के इधर करके उस पचीस बना लिया करता था और अपने छियालीस वर्षों के चार और छ को इधर स उधर करके चौंसठ वष का हो जाया करता था ।

दलीप का रूप भी उस दिन ऐसा ही था—मानो वह अपनी आयु के सतीस अडतीस वष माइयें[1] पडी रही हो, और अब लाल हरे वस्त्र पहनकर उस लोकगीतो की गोरी के समान रूप चढा हो ।

---

१ पजाब म विवाह की एक रस्म जिसम विवाह स लगभग पन्द्रह दिन पूव लडकी अच्छा कपडा नही पहनती और न तेल उबटन लगाती है।

फिर अजीब दिन आए। मेरे लिए एक ही नदी म जसे एक किनारे 'ठडा ठार' पानी बहता हो और दूसरे किनारे पर गम उबलता हुआ। वह जिस दलीप ने अपने साथ क लिए नही चुना था—मैंने उसकी दीवानगी का आलम भी देखा उसकी वे कविताए सुनी जिन्ह केवल मन म जलती हुई आग ही लिखवा सकती है।

उसन अपनी मुहब्बत की तकदीर को स्वीकार कर लिया था, पर वह मन की भीतरी तहा तक वीतराग हो गया था। कभी किसी दिन मुझे उसका पत्र आ जाता जिसम मरने की कामना से भरी हुई एकाध पक्ति हाती और कुछ नही।

मैं उसकी उदासी के कारण उदास थी, पर दलीप को खुश देखना चाहती थी, इसलिए कभी उसकी बात दलीप को नही सुनाई। दलीप को खुश देखना उसकी भी लगन थी और उसन दलीप के रास्ते से गुजरना भी छोड दिया—यद्यपि अपन जीवन की सभी राहा पर उसे केवल दलीप ही दिखायी देती थी।

जानती हू—दलीप के मन म वह नही था, जो कुछ था उसके अपन ही खयालो का जादू था। पर जादू जादू होता है, जब उसके कलम मे उतरता, कविता बन जाता।

मेरे पास उसका एक पत्र अभी तक सभालकर रखा हुआ है—'जब से दिल्ली से आया हू आपको कुछ नही लिखा। जब भी लिखने को जी करता है मेरी रुलाई निकल जाती है। न जान क्यो हर समय शराब पीन को जी करता रहता है। ' आपका उपन्यास 'दिल्ली की गलिया' क्या वहा समाप्त नही हो सकता था, जहा कई वर्षों बाद जब सुनील कामिनी के दफ्तर मिलने के लिए आता है चार बजे, और पाच बजे फिर आन के लिए कह जाता है और इस दौरान कामिनी नासिर को फोन करके यह सब-कुछ बता देती है और नासिर कहता है कि तुम्हें जरूर उसक साथ जाना चाहिए जो भी नासिर है वह यही कहता नासिर न सदा यही कहा है यही कहगा और नासिर कभी कामिनी का नही हो सकेगा पर आपन कहानी म नासिर से क्या कामिनी का दरवाजा खटकवाया ? क्या ? नासिर को कभी यह नसीब नही हुआ। उसकी नियति है कि उसे हर राह पर चलना है, हर रात म जीना है मैं आजकल न पटियाला हू न चडीगढ, न लुधियाना, न गाव। हा, इन शहरा को मिलान वाली सडका पर सफर कर रहा हू, भटक रहा हू पर यह कहना शायद इस तरह लगेगा जसे मैं तरस का पात्र बन गया होऊ आपका अपना जिसका आज कोई एड्रेस नहीं है ।'

मैंने यह पत्र दलीप को कभी नही सुनाया, पर सुना—उसके घर का पता भी उससे खोया जा रहा है।

- दलीप के नही, उसकी मा क बोल कानो म पडे— सब पिछले जन्मा के हिसाब किताब होत हैं बेटी !

दलीप से जब भी पत्र लिखकर पूछा तो वह हर बार जवाब को टाल देती, और कुछ इस तरह की बात लिख देती— आप मेरी चिन्ता न किया करें सांस और शक्ति खत्म होती महसूस होती है बुखार आता रहा था पर आप चिन्ता मत करना मौत के निकट आने का एहसास भी अजीब होता है। फिर बुखार चढ़ने लगा है मेरी चिन्ता मत कीजिएगा ।

यह चिन्ता न कीजिए मानो उसका तकिया कलाम बन गया था। हर पत्र में यही वाक्य। पगली ने इतना न सोचा कि वह जब बार-बार कहेगी— चिन्ता न कीजिए तो उसमें से कितनी चिन्ता छनेगी ?

केवल एक पत्र में उसने लिखा— आपने कभी एक कविता लिखी थी—पूना का था इक कापिनो मरुस्थल से गुजरा था। आज मेरा जी चाहता है एक उपन्यास लिखूं जिसका आरम्भ भी इसी से हो और अन्त भी '

यह पत्र बहुत कुछ कह गया बन्द होठों से भी। और बाद में तो उसके पत्रों की पंक्तियां और भी कम होती गयीं, और पत्रों का अन्तराल बढ़ता गया

एक बार फिर उसका एक गूंगा-सा पत्र आया—आज 'अजन्मी बटिया' का बाबुल याद आ गया तो पत्र लिखने बैठ गयी। आपने कहा था न कि अपने दोस्तों पर विश्वास न छोड़ना

और लम्बे अरसे के बाद जब एक बार दलीप मिली तो पूछा—दलीप ! तुम्हारी प्रकाशित हो रही पुस्तक का समर्पण है— इतिहास केवल इतिहास की पुस्तकों में नहीं होता। पुस्तकों में लिखे जाने से बहुत समय पहले इतिहास लोगों के शरीरों पर लिखा जाता है। और यह पुस्तक समर्पित है उन लोगों को जो इतिहास को अपने शरीरों पर लिखा जाना झेलते हैं। सो, एक तरह से यह पुस्तक तुमने अपने आपको समर्पित की है।

वह कहने लगी—आप कहती हैं तो ठीक ही कहती होंगी।

कहा—फिर उस इतिहास की बात करो जिसका शरीर पर लिखा जाना तुमने झेल लिया है।

उसने आवाज दबा ली, बोली—सब बातें शब्दों में नहीं कही जातीं।

पूछा—कभी मैंने लिखकर तुम्हारी बातें की थीं और उन बातों का नाम रखा था मी जोन में एक रात' पर आज की बात अगर लिखूं तो उनका क्या नाम रखूं ?

कहने लगी—मी जोन के उलटे शब्द क्या होते हैं ? जो होते हों वही रख दीजिए।

आंखों में पानी सा भर आया कहा—नहीं, मी जोन नहीं

सोचती हूं—यह भी शायद जिन्दगी का एक मोड़ है हो सकता है मोड़ बदलकर जिन्दगी उसे फिर उस हंसते हुए रास्ते पर डाल दे जो उसने १६७२

के शुरू म ढूढा था

पर दोस्ता को क़दम कदम उदासी के रास्त पर चलते हुए देखना वहुत कठिन अनुभव है

एक सिजदा

१९७२ का अगस्त, अठारह तारीख। अशोका होटल से फोन आया— मैं पाकिस्तान स सुलह की बातचीत करने के लिए जो डेलीगेशन आया है उसका एक मेम्बर बोल रहा हू '

खाना खा रही थी, हाथ का ग्रास हाथ मे रह गया। मन के अन्ततम म एक तप्ति का आभास हुआ। घडी की ओर देखा—आधा घटे मे वह फोन वाला भला आदमी मुझे सज्जाद का खत और उसकी भेजी हुई एक किताब देने आ रहा था

आधा घटे बाद आने वाले को लैंपशेड पर पेंट किया हुआ फैज का शेर दिखाया और लाइब्रेरी की अलमारियो पर पेंट किया हुआ कासमी का शेर दिखलाया। कहा—'इस बार सुलह की बातचीत को पूरा करके जाना उन देशो मे आपस म काहे की दुश्मनी जिनके शेर एक-दूसरे के घरो की दीवारो पर बठे हुए हैं '

प्यारा-सा जवाब मिला— इन्शा अल्लाह जरूर सुलह होगी।

और उस भले दूत के जाने के बाद खत खोला अक्षरा का जादू देखा जो काली स्याही मे नहाकर, लगता था सुनहरी हो गए हैं—'ऐमी ! तुम्हें खत भेजन का मौका गवाया नही जा सक्ता, जब भी कोई मेहरबान सरहद को चीरने लगता है। मेरा पिछला खत तुम्हें रोम से पोस्ट हुआ था—वह एक उस दोस्त ने किया था जो हमार पहले प्रेसिडेंट के साथ वहा गया था। मुझे उम्मीद है मिल गया होगा। इस बार एक ऐसा सजोग बना है कि यह खत शायद तुम्हें दस्ती पहुचाया जा सके। इस लेटर आने वाला मरा एक प्यारा दोस्त है—वह शायद तुम से मिलना भी मुमकिन कर ले। मैं तुम्हें देखना चाहता हू—इतना, कि चाहे एक एतवारी दोस्त की आखो स ही देखू। मैंने उससे कहा है—फोन कर, पूछे कि मुलाकात मुमकिन हो सकती है ? अगर हो जाए तो वह जब वापस आएगा मैं उमस कितनी देर तक कितने ही सवाल पूछता रहूगा—वह कैसी लगती है ? वह कैसे कपडे पहने हुए थी ? क्या वह हसी थी ? मेरे बारे म उसने क्या कहा था ? वह अभी भी उसी तरह म है ?—एक सौ सवाल। वह खुशनसीब है—मैं एक

उडते हुए पल की मुलाकात के लिए तरसा हुआ हू '

खलील जिब्रान ने जब कहा था— जिन्दगी का मकसद ज़िन्दगी के भेद तक पहुचना है—और दीवानगी इसका एकमात्र रास्ता है।' मैं सोचने लगी—तब मेरे सज्जाद का नाम खलील जिब्रान था

मुझे अपनी दीवानगी पर गर्व है—पर आज वह भी सज्जाद की दीवानगी के सामने सिजदे मे झुकी हुई है।

ईश्वर-जैसा भरोसा

जिन्दगी म बहुत से ऐसे दिन आये हैं जब हाथ म थामे हुए कलम को गले से लगाकर रोयी हू—

'ईश्वर जैसा भरोसा तेरा न जाने कब और कौन किसी का यह बन जाता है

यह कलम मेरे लिए सदा हाज़िर नाज़िर खुदा के समान रहा है—इसे आखो से देख सकती हू हाथो से छू सकती हू और एक सूत कागज की तरह इसके गले लग सकती हू

इसका और अपना रिश्ता कुछ 'अक्षर' कविता म डाल सकी थी'—

फेर ओहियो हवा जिहने झोली' च खिडाया
ते जिहने मेरी मा दी मा दी मा नू जाया
किथो दौड के आयी—
ते हत्था दे विच्च कुज्झ अक्खर ले आयी
'एह निक्किया कालिया लीका ना जाणी
एह लीका दे गुच्छे तेरी अग्ग दे हाणी '
त ऐस तरहा कह दी ओह लघ गई अग्गे
तेरी अग्ग दी उमरा ऐना अक्खरा नू लग्गे ।'

---

१ फिर वही हवा जिसन गोदी म खिलाया
और जिसने मरी मा की मा को मा को जाया
कही से दौडकर आयी—
और हाथो म कुछ अक्षर ले आयी
इन्हे नन्ही काली लकीरें न समझना

आधी शताब्दी के इस अरस म कुछ और शौक भी लग गए थे—सबसे पहले फोटाग्राफ़ी का था। पिताजी न घर म डाक रूम बनाया हुआ था, इसलिए फिल्म धोते और नेगटिव से पाज़िटिव बनाते समय—खाली कागजा पर उभरते चमकते चेहरे—एक ससार रचने के समान लगते थे। कुछ अरसे तक इस शौक ने मन को पकड़े रखा। फिर डासिंग ने मन और ध्यान खीच लिया। लाहौर मे तारा चौधरी से कोई छह-आठ महीने सीखा, पर जब तारा ने स्टेज पर अपने साथ काम करने का बुलावा दिया तो घर से इजाजत नहीं मिली। शौक मुरझा गया। यह सूखे पत्ता की तरह जमीन पर गिरा ता एक नय बीज के रूप म अकुरित हुआ—सितार बजाने का शौक। हिन्दुस्तान के विभाजन के समय तक यह शौक बहुत खिले हुए रूप म था। लाहौर रेडियो स्टेशन से कई बार सितार बजाया—मास्टर राम रखा, सिराज अहमद और फीना सितारिया मरे उस्ताद रह थे। इसक साथ-साथ टनिस खेलने की भी ललक थी। लाहौर के लारंस गाडन म पीछे की तरफ के लान पर रोज़ जाकर टैनिस सीखती थी। परदेश का विभाजन होते ही य सब शौक मरे लिए अजनबी हो गये। इनके लिए जैसी फुरसत और जसी सहूलियतों की आवश्यकता थी उनके लिए जीवन मे कोई स्थान नहीं रह गया, इसलिए ये शौक बेगाने हो गये।

सामन—गमे रोज़गार था। अचानक एम एस रधावा से १६४८ म मुलाकात हुई तो उन्होंने दिल्ली रेडियो स्टेशन के डाइरेक्टर को पत्र लिखकर मुझे नौकरी दिलवा दी। बारह बरस यह नौकरी की।

इस नौकरी के पहले कुछ वर्षों म काट्रक्ट रोज़ाना के हिसाब से था, पाच रुपए रोज के हिसाब। जिस दिन बीमार हो जाऊ या छुट्टी ले लू, उस दिन के पाच रुपय काट लिय जात थे। इसलिए बीमार होने का शरीर को अधिकार नहीं दे सकती थी। कभी-कभी बुखार और जुकाम से आवाज रुक जाती ता मुश्किल आ पड़ती थी। आज याद आ रहा है—मेरे सेक्शन का मरा एक कालीग कुमार हुआ करता था। ऐस म वह मेरे स्थान पर अनाउस कर दिया करता था—लम्बी अनाउसमट वह कर देता था बहुत छोटी मुझसे करवा देता था ताकि उस दिन की रिपोट म ग़लत भी कुछ न लिखना पड़े और उस दिन के पाच रुपय भी मुफ्त मिल जाए।

देखा—जिन्दगी के हर उतार चढाव के समय जो मेरे साथ रही थी वह मेरी सखनी थी। चाहे कोई घटना मुझ अकेली पर घटती चाहे देश के विभाजन

य लकीरा के गुच्छे तरी आग के साथी
और इस तरह कहते कहने वह बन गयी आग—
तेरी आग की उम्र इन अक्षरा को लग जाए।

जसा कोई बांड लाया लोगा के साथ हो जाता यह लेखनी मर अगा क समान मरा एन अग बनकर रहती थी। सा क्वल यही जिन्दगी का पैमाना था। अन्य सब गौन जसे खाद बनकर इसके रगा रसो म समा गए।

न जान जिन्दगी म कौन सी सुगध के लिए क्या क्या खाद बन जाता है साहिर और सज्जाद की दोस्ती भी लगता है इमरोज की दोस्ती के खिले हुए फूल म वही शामिल है भले ही खाद बनकर उस उवर बनान के रूप म।

इधर दो-तीन बरस हुए साहिर से मुलाकात हुई तो उसका तराजा ऐसा खूबसूरत था, दो दिन उसके घर रही। वापस आकर दो कविताए लिखी— कई वरया दे पिच्छो अचानक इक मुलाकात, त दोहा दी जिंद इक नजम वाग कम्बी"[1]

पर इस कांपती हुई खूबसूरती के बावजूद वह हालत मैंन सिर्फ इमरोज के साथ देखी है जिसम उसके यह कहन पर मैं १९६० का तुम्हारा कुसूरवार हू यह १९६० का बरस मेरा बचपन था मेरा कुसूर था —और चाहे मैंन उसके कुसूर की पीडा म से 'जनम जली जसी कई कविताएं लिखी थी पर आज सहज मन से यह कह सकती हू— तुम्हारे और मेरे कुसूर क्या अलग-अलग हैं ?'

यह आज है। न जाने कितने 'कल इसकी खाद बन हैं

यह आज मेरी उम्र जितना लम्बा हो, यह चाह सकती हू पर अगर किसी दिन यह आने वाला कल न बनना चाहे तो भी लगता है, कह सकूगी— हमारे कुसूर अलग-अलग नहीं।

इस 'आज की कोई भी कल न हो तब भी इसके अर्थ कम नहीं होते।

इमरोज मुझसे साढे छह बरस छोटा है। मुझसे अब धूप और मह नही सहे जाते पर उसे इनसे कोई फर्क नही पडता। कई बार हसकर कहती हू—खुदा एक जवानी तो सबको देता है, पर मुझे उसने दो दी हैं—मेरी खत्म हो गयी तो दूसरी उसने मुझ इमरोज की सूरत म दे दी। जिसके हिस्से म दो जवानिया आए उसके आज को कल का क्या अरमान हो सकता है!

जब 'रोजी' कविता लिखी थी जोई कमाणा सोई खाणा, ना कोई किणका कल दा बचया ना कोई भोरा भलक वास्ते[2] तब उस 'आज की आखा म पीडा के लाल डोरे थे। इस तकदीर को स्वीकार किया था, पर दांतो तले होठ दबाकर

आज यह तकदीर मन की सहज अवस्था है

अब—जिस घडी भी सब कुछ से विदा होना पडे तो सहज मन से विदा हो

---

१ कई बरसा के बाद अचानक एक मुलाकात और दोना एक नजम की तरह कांप गए

२ जो कमाना वही खाना न कोई टुकडा कल का बचा, न तिल मात्र कल के लिए

सक्ती हू। केवल चाहती हू—जिनका मेरे होन मेरे जीने से कोई वास्ता नही था उनका मेरी मौत से भी कोई वास्ता न हो। ऐसे अवसरा पर प्राय वे लोग इर्द गिर्द आकर खडे हो जात हैं जो कभी पल का भी साथ नही होत केवल भीड होन हैं। भीड का मेरी जिन्दगी स भी वास्ता नही था। चाहती हू इसका मेरी मौत से भी वास्ता न हो। राह रस्म कभी भी मेरी कुछ नही लगती थी। व लोग किसी 'भोग या शोक-सभा के रूप में तब भी कुछ झूठ सच बोलन का कष्ट न करें।

पजाबी का कोई अखबार रिसाला ऐसा नही था जिसे खोलते हुए मुझे यह मालूम नही होता था कि इसम किसन क्या मेरे विरुद्ध उगला होगा (कई जो मुझ स पहले इमरोज के हाथ आ जाते थे वह उन्हें मुझसे छिपाकर फाड देता था। इसका कुछ वणन मरे उपन्यास दिल्ली की गलिया मे आया था। उसमे इमरोज नासिर के रूप म था)—और मेरी मौत के बाद उन्ही अखबारो के 'शोक' एक बहुत बडा झूठ होंगे। और मैं समझती हू—किसी भी लाश के पास अगर कोई फूल पत्ता नही रख सकता तो उसे झूठ जैसी वस्तु रखन का भी कोई अधिकार नही है। इमरोज ने यथाशक्ति मुझे जीती को भी इन झूठों से बचाया था उससे ही कह सकती हू—कि वह किसी झूठ को मेरी लाश के पास न फटकने दे

मेरी मिट्टी को सिफ मेरे बच्चो के, और इमरोज के हाथ काफी हैं। सिफ काफी नहीं, गनीमत हैं।

मरी हुई मिट्टी के पास किसी जमाने मे लोग पानी के घडे या सोने-चादी की वस्तुए रखा करत थ। ऐसी किसी आवश्यकता मे मरी कोई आस्था नही है—पर हर चीज के पीछे आस्था का होना आवश्यक नही होता—चाहती हू इमरोज मरी मिट्टी के पास मेरा कलम रख दे।

एरिक हाफर क शब्दा म मनुष्य खुदा की एक अधूरी रचना है और उसका प्रत्येक सघष खुदा के अधूरे छोडे काम को पूरा करने का प्रयत्न होता है। कभी अपने 'यात्री' उपन्यास के सबध म कुछ पक्तिया लिखते हुए मैंने लिखा था—'यह अपन स आगे अपने तक पहुचने की यात्रा है।' आज एरिक हाफ़र को पढते हुए लगा—यह अपने से आगे अपने तक पहुचन का प्रयत्न कदाचित अधूरे-स्वय को कुछ न कुछ पूण करने का ही प्रयत्न है इसीलिए जो लेखनी इस सम्पूण रास्ते म मर साथ रही, चाहती हू—मास क मिट्टी हो जाने की सीमा तक मेरे साथ रह।

रोज सवेरे पेड पौधा को पानी देना मेरे सबसे प्यारे कामा मे शुमार है। रोज सवेरे जितनी देर पानी देती हू इमरोज हाथ मे सवेरे का अखबार लिये साथ-साथ मुझे खबरें सुनाता है। पहले अगले आगन म फिर पिछले और फिर बीच के आगन म। एक दिन पेडो के इद गिद लगाया हुआ मनी प्लाट इमरोज का दिखाया और कहा— देखो यह मनी प्लाट कसा बेलो की तरफ बढ गया है ता उसने उत्तर दिया— तुमने तो पानी द देकर वारिस शाह की बेल का भी बढा दिया है, यह ता सिफ मनी प्लाट है।'

कभी-कभी खुशी और उदासी एक साथ आ जाती है, कहा—'वारिस शाह की बेल को दिल का पानी दिया था, दिल का भी आसुओ का भी पर याद है तुम्हे वह समय जब तुमस पहली बार मिली थी तो यह खबर चारा तरफ फल गयी थी। तभी जब जालधर म किसी समागम क प्रधान पद के लिए मेरा नाम प्रस्तावित हुआ तो कम्यूनिस्ट पार्टी क एक नता न कहा था—नही हम उस नही बुलाएगे, उसकी बदनामी क कारण हमारी सभा बदनाम हो जाएगी।'

उसी शाम को दिल्ली के खालसा कॉलिज न मुझे रिसप्शन दिया था—दिल्ली यूनिवर्सिटी से डी० लिट०की डिग्री मिलने क सिलसिले म। मन म वही सवर का माहौल था उनका शुक्रिया अदा करके कहा— लेखक हर हाल म लेखक है, मौसम चाहे शोहरत का हो चाहे गुमनामी का चाहे बदनामी का

अब—समय बीत जान पर शोहरत को गुमनामी को और बदनामी को जिन्दगी के मौसम कह सकती हू। तसल्ली भी है कि सब मौसम देखे हैं। पर पहले—कई बरस पहल—इन मौसमा मे गुजरना बहुत कठिन लगता था।

जिन्दगी, इमरोज के साथ मे कोई समतल वस्तु नही है यह अति की ऊचाइयो और निचाइयो से भरी हुई है। इसम दो व्यक्तित्व मिलते है और टकरात हैं—नदियो के पानियो की भाति मिलते हैं और दो चट्टानो की भाति टकराते हैं। पर चौदह बरस (राम वनवास जितने बरस) के अनुभव के बाद कह सकती हू कि इस राह की निचाइया छोटा सच हैं और इस राह की ऊचाइया बडा सच हैं।

इमरोज का व्यक्तित्व दरिया के प्रवाह के समान है। जसे दरिया एक सीमा स्वीकार करता है पर नहर जसी पक्की बधी हुइ सीमा नही चाहे तो अपने प्रवाह का रुख भी बदल सकता है। इमरोज के लिए कोई रिश्ता कवल तब तक रिश्ता है जब तक वह बधन नही है। रिश्त अक्सर अपन स्वाभाविक स्वतन्त्र रूप म नही होते—कभी उनकी नकेल कानून के हाथ म होती है तो कभी सामाजिक कतव्य के पर इमरोज के शब्दा म— अगर राह अपनी है ता राहदारी की क्या जरूरत

है ?' हर कानून 'राहदारी' होता है। इमरोज को यह राहदारी अपनी राह की तौहीन लगती है।

मुझ पर उसकी पहली मुलाक़ात का असर—मेरे शरीर के ताप के रूप म हुआ था। मन मे कुछ घिर आया, और तेज़ बुखार चढ गया। उस दिन—उस शाम उसने पहली बार अपने हाथ से मेरा माथा छुआ था—'बहुत बुखार है ?' इन शब्दों के बाद उसके मुह से केवल एक ही वाक्य निकला था—'आज एक दिन म मैं कई साल बडा हो गया हू।'

इमरोज़ मुझसे साढे छह बरस छोटा है। पर उस दिन उस पहली मुलाक़ात के दिन—वह जब अचानक कइ बरस बडा हो गया तो इतना बडा हो गया कि अपने और मेरे अकेलेपन को नापकर वह अक्सर कहने लगा—'नहीं और कोई नही, और कोई भी नहीं, तुम मेरी बेटी हो मैं तुम्हारा पुत्र हू।'

और जहां तक उसी दोस्ती की राह म आने वाली निचाइयों का प्रश्न है—उनके कारण बहुत ही छोटे होते हैं, पर उनसे पैदा होने वाला उसका गुस्सा और मेरी उदासी—कोई तीन घटे के लिए बहुत गहरे हो जाते हैं—इतने गहरे कि अकेलापन 'आखिरी सच' लगने लगता है। ये कारण होते हैं—ड्राइंग रूम की एक गद्दी उलटी क्यो पडी हुई है ? सिगरेट का खाली पैकिट दीवान पर क्या गिरा हुआ है ? गोद की शीशी जिस मेज़ पर से उठाई थी, उस पर न रखकर उसे दूसरे कमरे की मेज़ पर क्यों रख दिया ? अगर कार बाहर निकली थी तो गैरेज का शटर क्या नहीं बन्द किया ? और नौबत यह आ जाती है—हाथ का ग्रास हाथ म और सामने प्लेट मे पडी हुई रोटी प्लेट म रह जाती है। घडी की सुई एक ही जगह पर अटक जाती है। एक खामोशी छा जाती है—जिसमे केवल एक खटका बहुत जोरसे एक बार सुनाई देता है—और उसके कमरे का दरवाज़ा एक ठहाके से बन्द हो जाता है।

लगभग तीन घटे इस तरह बीत जाते हैं जैसे समय का ऊपर का सास ऊपर, नीचे का सास नीचे रह गया हो। फिर इमरोज के एक हसीनतर फिकरे से यह खामोशी टूटती है—'मैं तुम्हारा शीर्षासन तुम मेरा प्राणायाम!'

इसीलिए इन सब निचाइयों को छोटा सच कह सकती हू और इमरोज़ के अस्तित्व को बडा सच।

हिन्दी कवि कैलाश वाजपयी को ज्योतिष का गहरा ज्ञान है। एक दिन कैलाश ने कहा—'अमता! तुम्हारे जन्म के समय चन्द्रमा तुम्हारे भाग्य के घर म बैठा हुआ था।' मैं हस रही थी—'पर वह तो ढाइ घडी बैठकर चला गया होगा' कि पास से ही हसकर इमरोज ने कहा—'वह कोई इमरोज थोडे ही था जो फिर और कहीं न जाता, वह सिर्फ चन्द्रमा था आया, बैठा और फिर उठकर टहल दिया चन्द्रमा का तो घर घर जाना होता है न'

याद आ रहा है—एक दिन बीमारी की हालत मे मैंने इमरोज से कहा—मैं इस दुनिया से चली गयी तो तुम अकेले मत रहना दुनिया का हुस्न भी देखना और जवानी भी। तो इमरोज ने बल खाकर कहा—मैं पारसी नही हू जिसकी लाश को गिद्धो के हवाले कर दिया जाता है। तुम मेरे साथ और दस बरस जीने का इकरार करो—मेरी एक हसरत अभी बाकी है मैं एक अच्छी फिल्म बना लू बस वह बनाकर फिर एक साथ दुनिया से जाएगे।'

ये शब्द जिस घडी कहे गए उस घडी इससे बडा सच और कोई नही था। इसीलिए कहती हू—जिन्दगी की सारी कठिनाइया छोटा सच हैं, और इमरोज का साथ बडा सच।

यह बडा सच—हसी मजाक की रौ म भी कभी छोटा नही हुआ। एक बार मुझे और इमरोज को चाय पीने की इच्छा हुई। इमरोज ने कहा—अच्छा तुम गैस पर चाय का पानी रखो आज मैं चाय बनाऊगा।' मैं बिस्तर म बैठी हुई थी उठने को जी नही कर रहा था। कहा—'मेरे तो अब थोडे से दिन रहते हैं जीने के, पर जितने भी बाकी रहते हैं अब मैं इस तरह जीना चाहती हू मानो ईश्वर के विवाह म आयी हुई होऊ। इमरोज कोई मिनट भर के लिए चुप रहा, फिर कहने लगा—पर मैं भी तो ईश्वर के ब्याह मे आया हुआ हू!' मुझे हसी आ गयी—हा हा, पर तुम लडकी वाले की तरफ से हो, मैं लडके वाले की तरफ स। उस दिन से रोज एक मजाक सा चल गया कि बातो बातो म इमरोज कह देता—अच्छा जी! यह काम भी हम ही करे देते हैं हम लडकी वाले की तरफ से जो हुए—आप बैठे रहे लडके वालो!

सच—इमरोज की दोस्ती म जैसे मैंने सचमुच ईश्वर का विवाह देखा हो विवाहो पर होने वाले बिरादरी वालो के झगडे भी देखे हैं और विवाह भी

रसोइया कभी मेरे लिए जरूरी होता था इतना कि अगर उसे बुखार चढता हुआ मालूम हो तो घबराकर सोचती थी—हाय ईश्वर, मुझे बुखार चढ जाए पर रसोइये को न चढे नही तो रोटी मुझे बनानी पडेगी पर पिछले सोलह सतरह बरसो स रसोइया मेरे लिए जरूरी नही रहा। (अपने हाथ से रोटी पकाने की आदत मुझे अन्दरेटे जाकर पडी थी। मैं और इमरोज कागडा वैली प्रसिद्ध चित्रकार सोभासिहजी स मिलने गए थे, पर हमारे खाने का सारा झझट जब सोभासिहजी की पत्नी पर पड गया तो अच्छा नही लगा। मैंने कोशिश की तो मुझस लकडिया की आग नहा जलायी गयी। पर जब इमरोज ने फूकें मार कर आग जलाने का जिम्मा ले लिया तो मैंने रोटी बनाने का जिम्मा ले लिया। और फिर वापस आने पर नौकर एक दखल अन्दाजी मालूम होने लगा।) सो पिछले सोलह-सतरह बरसो स रोटी अपने हाथ से बनाती हू। कमरो और बरतनो की सफाई मजाई के लिए पाट टाइम प्रबन्ध है। इसस ज्यादा मुझे

किसी नौकर की आवश्यकता नही पडती। पर अगर यह पाट टाइम वाला कभी बीमार हो या छुट्टी पर हो तो बरतन भी खुद साफ कर लती हू। ऐस समय म मैं बरतन माजती हू और इमरोज पास खडे होकर मुझे गम पानी दिए जाता है, मैं बरतन धोए जाती हू। और जब कभी वह स्टडियो म पेंट कर रहा होता है मैं उसे उठने नही देती खुद ही बरतनो का काम खत्म करके आवाज दे दती हू—'लो, लडकी वालो! आज तो लडके वालो न बरतन भी माज दिए है। —और फिर जसे यह मजाक हमारी जिन्दगी का एक हिस्सा बन गया है उसी तरह एक उत्साह भी हमने अपने लिए सुरक्षित रखा हुआ है। इमरोज का व्यवसाय बहुत महगा है रग भी। कभी उसके पास नया कनवस खरीदने के लिए पसे न हो तो कहती हू—तुम्हारी पहली पेंटिंग मैंने खरीद ली यह लो पस—तुम नया कनवस खरीद लो और पेंट कर लो।' और जब कभी मुझे अपनी किताबो स पसे न मिल रहे हो और मैं उदास होऊ तो वह कहता है—चलो! आज मैंन तुम्हारी अमुक कहानी पर फिल्म बनान का अधिकार खरीद लिया, यह लो साइनिंग एमाउन्ट और इसका फिल्मी अधिकार मुझे बेच दो।'

जानती हू, पसे उसक पास हो या मेरे पास, रहत उतन के उतने ही हैं—पर हम मौका आन पर उस दिन का उत्साह अवश्य कमा लते है और इस तरह हर कठिन दिन को आसान बना लेते है। और यह सब कुछ इतना बडा सच बन जाता है कि पसा की कमी छोटा सच हो जाती है।

मैं केवल मन म नही ट्रको-अलमारियो म कई छोटी छोटी चीजें सभाल-कर रख लेती हू। किसी के जन्मदिन पर कोई सौगात देनी हो, मेरे ट्रको और अलमारियो म स कुछ न कुछ जरूर निकल आता है। अचानक कुछ खरीदना पड जाए बक के किसी न किसी एकाउन्ट म स उसके लिए रकम भी मिल जाती है। बे-समय भूख लग आए तो फ्रिज म स कुछ न कुछ खाने के लिए भी मिल जाता है। इमरोज इस बात पर बहुत हसता है। एक बार हसते हुए कहन लगा —तुमने मरा भी कुछ हिस्सा कही बचाकर जरूर रखा होगा ताकि अगले जन्म म काम आए'

अगल जन्म का पता नही पर लगता है पिछले जन्म का जरूर कुछ बचा-कर रखा हुआ था जिस इस जन्म म मैं दुगम रगिस्तान म पानी के कटोरे के समान पी सकी हू। और सोचती हू—ईश्वर कर उसकी बात भी ठीक हो जाए और मैं उस, कुछ कही मे अपने अगले जन्म के लिए भी बचाकर रख सकू

एक कविता की व्याख्या

५ सितम्बर १९७३ की रात थी। साढे दस बजे थे। मैं काजानजाकिस की किताब 'राक गार्डन' पढ रही थी कि टेलीफोन आया—एक यूनिवर्सिटी के वाइस चासलर कह रहे थे— सवेर सीनेट की मीटिंग है जिसमे तुम्हारी कहानी एक शहर की मौत के खिलाफ रेजोल्यूशन पास होना है। मैं तुम्हारे पिताजी का दोस्त हुआ करता था, उनकी इज्जत करता था इसलिए तुम्हे फोन कर रहा हू कि तुम्हारी कहानी एक शहर की मौत' के साथ तुम्हारे लेखन की मौत हो गयी है।'

मैंने यह मौत की खबर सुनी। वाइस चासलर साहब सचमुच इस मौत का अफसोस कर रहे थे इसलिए उनकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद करके पूछा— आपने यह कहानी पढी है ?'

नही। मैं लिटरचर के बारे मे ज्यादा नही जानता, मैं तो साइस का आदमी हू।

आपको लिटरचर के बारे मे मालूम नही तब भी आपकी विद्वता पर भरोसा करके कहना चाहती हू—आप खुद इस कहानी को एक बार जरूर पढें

मेरे पास इसके सिनाप्सिस आए हैं वे बहुत बुरे हैं।

'सिनाप्सिस, हो सकता है ठीक न हो।'

सिनाप्सिस कैसे गलत हो सकते हैं ?

'कोई प्रेजुडिस्ड माइड लिखे तो वे गलत हो सकते हैं।

'हा यह ठीक है पर

जब कहानी मौजूद है तो उसे पढने का कष्ट किया जा सकता है।'

हमारा कोई आदमी शायद रजिस्ट्रार, अगर दिल्ली आए तो उस समय दे देना, उससे कहानी डिसकस कर लेना '

'अगर आप खुद पढना चाहें तो मुझे फोन कीजिएगा, मैं कहानी को आपसे डिसकस कर सकती हू।

अच्छा, अगले हफ्ते फोन करूगा। आज मैंने बे-समय फोन किया है। असल मे मैं तुम्हारे पिताजी की इज्जत करता था वह बहुत ऊचे विचारो के थे, तुम्हारी इज्जत भी करना चाहता हू।

पर वह मुझे पढे बिना नही हो सकती।'

तुम ऐसा लिखो कि हम तुम्हारी इज्जत करें।

फिक्र न कीजिए जब तक मेरी नजरो मे मेरी इज्जत है मेरी इज्जत को ठेस नही पहुचती '

मेरी तरह मेरी इज्ज़त भी सारी उम्र किसी पर आश्रित नहीं रही। फोन बन्द हो गया तो वह भी मेरी तरह हस रही थी। चार कदम पर खडा हुआ इमराज़ फोन की बात सुन रहा था, ज़ोर से हस पडा, कहन लगा— रेज़ोल्यूशन कामों के निर्माण के लिए बने थे, इन लोगो ने रेज़ोल्यूशनो को किस काम मे लगा दिया ? ये ऐसे रेज़ोल्यूशन पास करेंगे तो रेज़ोल्यूशन शब्द की हतक करेंगे तुम्हें क्या ?'

उन्ही दिनो उस कहानी को सुरेश कोहली एक उस किताब के लिए अग्रेज़ी म अनुवाद कर रहे थे जिसम हिन्दुस्तान की कुछ चुनी हुई कहानियो का सग्रह छपना था। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर स मेरे सिलेक्टिड वर्क्स छप रहे थे—उसम भी यह कहानी चुनी गयी थी—और राजपाल एण्ड सस की ओर स मेरी कहानियो की पजाब से बाहर के पात्र जो किताब छप रही थी, उसकी मुख्य कहानी यही थी। पर यह सब कुछ न भी होता तो भी मुझे मालूम था कि यह कहानी मेरी अच्छी कहानियो म स है—और इसके लिख सकने की मेरी तसल्ली को किसी यूनिवर्सिटी का रेज़ोल्यूशन कम नही कर सकता।

उदासी यह नहीं थी—पर मन उदास था। उदासियो का एक लम्बा सिलसिला था, जो जिस दिन हाथ म कलम लिया था उसी दिन से मेरे साथ चलने लगा था—और फिर सदा मेरे साथ चलता रहा था।

फिर उन्ही दिनो देवेन्द्र सत्यार्थी साहब का सदा की भाति मेरे सबध म एक कटु लेख छपा। सत्यार्थी साहब ज़िन्दगी म कभी भी मेरे बहुत परिचित नही रहे, पर वह जब भी कभी मेरे बारे म लिखते रहे न जाने मन के किस सकट म फसकर लिखते रहे। खैर पजाबी म कई देवेन्द्र सत्यार्थी हैं जिन्हे किसी की रूह की पाकीज़गी से कोई वास्ता नही है। सो इस लेख का असर भी था, केवल इस लेख का नही था पर यह उपरामता के सिलसिले को चलाए रखने वाली एक छोटी सी कडी ज़रूर थी—सो उपरामता और लम्बी हो गयी और उदासियो के इस सिलसिले से तग आकर मैंने एक कविता लिखी—अलविदा।

किसी कविता की व्याख्या करने की आवश्यकता नही होती पर सोचती हू यह कविता एक व्याख्या की माग करती है क्योकि यह कविता इतनी इनडायरेक्ट है कि बाहर स केवल एक व्यक्ति से जुडी हुई प्रतीत होती है पर इसके भीतर का चेहरा एक व्यक्ति का नही, पूरे पजाब का चेहरा है।

पजाब का चेहरा मेरे लिए महबूब का चेहरा है पर उस महबूब का जो ग़ैरो की महफिल म बैठा हो।

लिखा—

खुदा ! तरी नज़म जिन्नी तनू उमर दवे !
मैं एस नज़्म दा मिसरा नहीं,
जु होर मिसरेया द नाल चलनी रह ना,
त तनू इक्क काफिये दी तरहा मिलदी रह वा।
मैं तरी जि दगी चों निकली हा—
चुपचाप—इस तरहा—
ज्या लफ़ज़ा दे विच्चा अथ निकलद।
ते बदनसीब अर्थों दा की—
ओहना दा होणा वी ओहना द निकलण जिहा।
त जीकण अज्ज इक्क अर्थ निकलेया
कल नू कोई नामुराद होर अथ निकलेगा
पर नज़्म इस जग त सलामत रह्वे
ते खुदा तेरी नज़्म जिन्नी तनू उमर देव।[1]

अपने अस्तित्व पर मुझे मान है—अगर पंजाब की धरती पंजाब की एक नज़्म है—तो मैं उस नज़्म के अर्थों के समान हू। अथ निकाले जाते हैं—आज और अथ कल को कुछ और अथ।

पजाब म इस समय जसी समझ और अदबी सियासत है, मैं सचमुच उसम स, चुपचाप उसके अर्थों की तरह, निकल जाना चाहती हू। और कल मुझे

---

१ खुदा तेरी नज़्म जितनी तुझे उम्र दे !
मैं इस नज़्म का मिसरा नहीं
जो और मिसरो के साथ चलती रहू
और तुमस एक काफिय की तरह मिलती रहू।
मैं तुम्हारी जिन्दगी स निकली हू
चुपचाप—इस तरह—
जस शब्दा से अथ निकलते है !
और बदनसीब अर्थों का क्या—
उनका होना भी उनके निकलने जसा
और जिस तरह आज एक अथ निकला है
कल कोई नामुराद और अथ निकलगा
पर नज़्म इस जग पर सलामत रहे
और खुदा तरी नज़्म जितनी तुझे उम्र दे।

मालूम है मेरी तरह, उसके अर्थों के समान और साहित्यिक भी उसम से निकलेंगे, निकाले जाएग।

नज्म जैसी धरती सलामत रह, पजाब सलामत रहे मेरी तमन्ना सिफ चुपचाप उसमें स निकल जान की है इसीलिए यह अलविदा' नज्म लिखी है।

ककनूसी नस्ल

इतिहास बताता है—फीनिक्स (ककनूस) से अपने आपको पहचानन वाली नस्ल ने अपना नाम फिनीशियन रखा था। ककनूस बार-बार अपनी राख म से जन्म लेता है—मनुष्या की जिस नस्ल ने हर विनाश मे से गुजर सकने की अपनी शक्ति को पहचाना अपना नाम जल मरनेवाले और अपनी राख म से फिर पैदा हो उठने वाले ककनूस स जोड लिया।

यह फीनिक्स सूरज की पूजा से सबधित है, सूरज जो रोज डूबता है और रोज चढता है। और य फिनीशियन्ज, जिनका उदगम-स्थान आज तक इतिहास को नात नही—यद्यपि इनके सबध समर और हिदुस्तान से पाए जात हैं—सदा सूरज की पूजा करत थे। आन सूरज का एक नाम था इसीलिए फिनीशियन्ज न जब यूरोप म नयी धरती की खोज की, उसका नाम ऐल ओन-डोन (सूरज का शहर) रखा जो आज लदन है।

इजराईल के जब बारह कबील बिखर गए थे प्रतीत होता है कि उनम से भी कुछ लोग फिनीशियन्ज से जा मिले थे क्योकि शब्द इग्लैंड की जडें हिब्रू भापा म हैं। जोजफ कबील का चिह्न बल होता था। बैल के लिए हिब्रू भापा म ऐंगल शब्द है। नयी खाजी हुई धरती को उन लागो ने ऐंगल-लैंड का नाम दिया जो आज इग्लड है।

मेरे खयाला का इतिहास से केवल इतना सबध है कि उस नस्ल का फीनिक्स से अपना सबध जोडना मुझे बडा अपना-सा और पहचाना हुआ लगना है। फिनीशियन नस्ल को मैं अपनी भापा मे ककनूसी नस्ल कह सकती हू। दुनिया के सब सच्चे लेखक मुझे ककनूसी नस्ल के प्रतीत होते हैं रचनात्मक क्रिया की आग म जलत और फिर अपनी राख म से रचना के रूप म जन्म लेते हुए।

बहुत वप हुए—'सूरज और जाडा' शीपक लेख म मैंने लिखा था—सूरज के डूबने से मेरा कुछ रोज डूब जाता है और इसके फिर आकाश पर चढने के साथ ही मेरा कुछ रोज आकाश पर चढ जाता है। रात मेरे लिए सदा अधेरे की एक घिनाव-सी रही है—जिस रोज इसलिए तरकर पार करना होता है कि

उसके दूसर पार सूरज है और लिखा था, 'यह सब-कुछ चेतन तौर पर नहीं हुआ। कब हुआ ? क्या हुआ ? पता नहीं। मैंने सिर्फ इस चेतन तौर पर समझने का प्रयत्न किया है। याद है—बहुत छोटी थी जब सूरज के डूबने के समय अचानक रोने लगती थी। मा कभी प्यार करती, कभी झिडक देती, और कभी मुझे थपर-कर सुलाते हुए कहती—बस आखें मीची सूरज आया। उसस रोज मेरा प्रश्न होता था—पर सूरज डूबा क्या ?

सूरज का जिक्र बार-बार मेरी कविताओ म आता रहा। केवल १९७३ म मैंने चेतन तौर पर पुरानी रचनाए खोजी, देखा कि यह जिक्र कस-कस आता रहा

१९४७ म देश के विभाजन के समय जबदस्ती उठाकर ले जायी गयी औरता की कोख से जन्मे 'मजबूर बच्चे की जबानी एक कविता लिखी थी—मेरा खयाल है सूरज का पहला और सशक्त वणन उसम आया था

धिक्कार हू मैं वह जो इन्सान पर पड रही
पदाइश हू उस वक्त की, जब टूट रहे थे तारे
जब बुझ गया था सूरज

उसी वष देश की स्वतत्रता के साथ बहुत स सपन जोडकर एक कविता लिखी थी मैं हिन्द का इतिहास हू और आजादी के जश्न के लिए कहा था

चन्द्रमा जो अम्बर से झुका है इसे प्रणाम करने को
और सूरज जो नत हुआ है इस सलाम करने को।

निजी मुहब्बत की भरपूर तीक्ष्णता मैंने १९५३ म देखी थी—उस समय की कविताओ म सूरज का वणन इस प्रकार हुआ है

चन्द्रमा से भी श्वेत शरीर पृथ्वी का
सब किरणें सूरज में से किरमची रग ढाककर लायी

हमने सूरज को घोलकर धरती का रग लिया
पूरब ने कुछ पाया है कौन से अम्बर को टटोलकर
जसे हाथ मे दूध का कटोरा, उसम केसर घोल दिया है

सूरज ने आज महदी घोली—

हथलिया पर आज दोना तकदीरें रग गयी

इस सूरज को, केसर वान दूध के कटोर के रूप म, और इसकी लाली का मेहदी के रूप मे, मैंने केवन तब ही देखा था। फिर इसका वणन उदास होता गया

पच्छिम म लहर उठी सूरज की नाव डोल गयी
गठरी पाटली उठाए अब साझ हमारी ओर आ रही है

बरसा तक सूरज जलाए, बरसा तक चाद जलाए,
आकाशों से जाकर चादी रग के तारे माग लायी
किसी ने आकर दीया न जलाया
घोर कालख प्राणा से लिपटी रही
जसे बरसा की बाती स रोशनी बिछुडी रही

पूरब स आधी उठी, अबर पर छा गयी
और चढते सूरज को जैसे उसने धुन दिया
सूरज सरकडे-सा, काल कामा चलते हुए,
धूप न जाने कहा गयी
सूरज सरकडे सा पडा है किरनें मूज जैसी

पूरब न चूल्हा जलाया, पवन फूकें मार रही,
किरनें ऊची हुइ जस आग की लपटें !

सूरज ने हाडी चढाई, धूप आटा गूधने लगी
खेता की हरियाली जस बिछावन बिछाया हो
आज ता आ जा, ओ परदेसी ! कल की कौन जान

सूरज की पीठ की
फागुन न उठते हुए सब गठरी पोटली बाध ली
ये भी तीन सौ पैंसठ दिन यू ही चले गए

हमारी आग हमे मुबारक, सूरज हमार द्वारे आया
और उसने आज एक कोयला मागकर अपनी आग सुलगायी

दिलो के नाजुक पोरा म
किरनो न सूइया चुभाइ जा आरपार हो गयी—
यह यादो का दावानल !
लाख पल्ले को बचाया, पर किनारा छू गया

आज चाद सूरज प्राणा का वाणिज्य करत हैं
और उजाले से भरे थाव दोना उलटते हैं
फिर हमे क्यो तेरी दहलीज याद आ गयो
आज लाखो खयाल सीढिया चढत-उतरते है

उम्र के द्वार मत भेडो, चलना अभी बहुत बाकी है
अभी सूरज का उबटन धरती अगो पर मल रही है

नीद के होठा से जसे सपने की महक आती है
पहली किरन रात के माथे पर तिलक लगाती है
हसरत के धागे जोडकर शालू-सा हम बुनते रहे
विरह की हिचकी मे भी हम शहनाई को सुनते रहे

रात की भट्ठी को किसन जलाया
सूरज की देग कैसे खौलती है
बात है दुनिया की, ऐ दुनिया वालो !
इश्क को फिर देग म बठना है

सूरज का पेड खडा था, किरना का किसी ने तोड लिया,
और चाद का गोटा अम्बर स उधेड दिया

सूरज का घोडा हिनहिनाया, रोशनी की काठी गिर गयी
उम्रा क फासले तय करता हुआ धरती का पथिक रो उठा

अम्बर के आले मे सूरज जलाकर रख दू
पर मन की ऊची ममटी पर दीया कसे रखू

आखा पर धुध का गिलाफ लिये किसकी पग धलि चूमने,
सूरज की परिक्रमा करती ठहर गयी धरती

नजर ने आसमान से है चल दिया सूरज कहीं
पर याद म अभी भी उसकी खुशबू है आ रही

सूरज न कुछ घबराकर आज
रोशनी की एक खिडकी खोली
बादल की एक खिडकी बन्द की
और अंधेरे की सीढिया उतर गया

अम्बर एक आशिक, निढाल सा बैठा, धुंध का हुक्का पी रहा
और सूरज के कोयले से रेखाए खींचता, किसी की राह देख रहा

आज पूरब की खटिया खाली है सुबह बठन को नही आयी
बावरा अबर उसे धरती की खाई म है खोज रहा

मुह म निवाला नही निवाले की बातें रह गयी
आसमा पर रातें काली चीला की तरह उड रही

सूरज एक नाव है जो पच्छिम की लहर स डूब गयी सूरज रूई का एक गाला है जिसे गहरी आधी ने धुन दिया सूरज एक हरा जगल है जो सूखकर सरकडा बन गया है सूरज दिल की आग स खाली है इसने मेरे दिल की आग से कोयला मागकर अपनी आग सुलगायी थी सूरज सूइयो की एक पोटली है जो मेरे पारा के आर पार हो गयी है सूरज एक खौलती हुई देग है जिसम आज मरे इश्क को बठना है सूरज एक पेड है जिस पर से किसी ने किरनें तोड ली हैं सूरज एक घडा है जिसके ऊपर से उजाले की काठी उतर गयी है सूरज एक दीया है जिसे अबर के आले मे रखकर जलाया जा सकता है सूरज मेरे दिल की तरह है जो घबराकर अंधेरे की सीढिया उतर जाता है सूरज एक बुझा हुआ कोयला है जिससे अबर लकीरें खीचकर किसी की राह देखता है सूरज एक उम्मीद है जिसके बिना रातें काली चीलो की तरह आसमान मे उड रही है

सूरज के ये अनेक रूप दख रही हू—और इनम चेतना का रूप भी है

दिन के आगन म रात उतर आयी, इस दाग को कसे सुलाऊ
दिल की छत पर सूरज चढ आया इस दाग को कैसे छिपाऊ

अभी भोर हुई है
छाती को चीरकर छाती म सूरज की किरन पडी है

जिदगी जो सूरज से शुरु होती है सब ग्रह पार कर अत मे फिर सूरज की ओर लौटती है। यह क्रिया भी अचेतन तौर पर लिखी गयी थी। आज उसे चेतन तौर पर देख रही हू

दिल के पानी म लहर उठी लहर के परा से सफर बधा हुआ,
आज किरनें हम बुलाने आयी, चलो अब सूरज के घर चलना है

निजी मुहब्बत की कविताआ के अतिरिक्त, सूरज और कविताआ मे भी बलात् आता रहा—जैसे मैंने हो ची मिन्ह स हुई अपनी मुलाक़ात पर कविता लिखी थी

वियतनाम की धरती से पवन भी आज पूछ रही है
इतिहास के गालो पर स आसू किसने पाछा
धरती को आज गयी रात एक हरियाला सपना आया
अम्बर के खेतो म जाकर सूरज किसने बोया!

और जग की भयानक आवाजो से मुक्त हुई धरती की आकाक्षा म जो कविताए लिखी

धरती ने आज पुछवाया है
भविष्य की लोरी कौन लिखेगा
कहते हैं—एक आशा किरनो की कोख मे आयी है

पूरब ने एक पालना बिछाया, जहो पुश्तनी एक पालना,
सुना है, सूरज रात की कोख म है

अरज करे धरती की दाई
रात कभी भी बाझ न हो, पीडा कभी भी बाझ न हो

ये सारी कविताए वे हैं—जो १९४७ और १९५९ के बीच के वर्षों म लिखी थी। इसके बाद के तरह वप और है। दख रही हू इनम भी सूरज का उल्लेख है

मुझे वह समय याद है
जब एक टुकडा धूप का, सूरज की उगली पकडकर
अघरे का मेला देखता, भीडा म खो गया

गलिया की कीचड पार कर अगर तू आज कही आए
मैं तेरे पैर धो दू
तेरी सूरजी आकृति
मैं कबल का किनारा उठाकर हड्डिया की ठिरन दूर कर लू
एक कटारी धूप की मैं एक घूट म पी लू
और एक टुकडा धूप का मैं अपनी कोख म रख लू
मैं कोठरी दर कोठरी—रोज सूरज को जन्म देती
मैं रोज सूरज को जन्म देती और रोज सूरज यतीम होता

इस नगर म भी सपने आते हैं
कितना विचारो के द्वार बन्द करो फिर भी भीतर आ जाते है
कही सगमरमर की घाटी है उसकी बात कह जाते हैं
और सारा नगर उनके कहन से, नींद म चल देता है
फिर रास्त म उसे सूरज की एक ठोकर लग जाती है

डेढ घटे की मुलाकात—
जसे बादल का एक टुकडा आज सूरज के साथ टका हो
उधेड थकी हू, पर कुछ नही बनता, और लगता है—
कि सूरज के लाल कुरते मे यह बादल किसी ने बुन दिया है

सूरज को सारे खून माफ हैं
दुनिया के हर इसान का—वह
रोज 'एक दिन' कत्ल करता है

अधेरे के समुद्र म मैंने जाल डाला था
कुछ किरनें कुछ मछलिया पकडने के लिए
कि जाल म पूरे-का पूरा सूरज आ गया

इस समय की लेनिन और गुरु नानक जसे व्यक्तियो के सबध म लिखी कविताओ म भी सूरज का उल्लेख है

तू मेरे इतिहास का कैसा पात्र है ?
मेरे दीवार के कैलेंडर से निकलकर
तू रोज उसकी तारीख बदलता है
और मुझे एक नये दिन की तरह मिलता है।
कैलेंडर से बाहर आकर
तू सड़क पर निकलकर चलता है
तो एक धूप निकल आती है
कच्चे गर्भ के दिन है मेरा जी नही ठहरता
दूध बिलोने बैठी, लगा मक्खन आ गया है
मैंने हाडी में हाथ डाला, तो सूरज का पेडा निकल आया

गुरु नानक की पत्नी सुलखनी की ओर से जो कविता लिखी वह सारी-की सारी सूरज से भरी हुई है

मैं एक छाया थी—एक छाया हूँ
मैंने सूरज की यात्रा के साथ यात्रा की है
सूरज की धूप पी है
और धूप की एक नदी में नहायी हूँ
यह सूरज परीक्षा का समय था
और सूरज परीक्षा का अन्त नही था
छाया की इस कोख को एक हुक्म था
कि अपने अंधेरे में से उसे किरनो को जन्म देना है
किरनो की जन्म पीडा सहनी है
और छाया की छाती में से
किरनो को दूध पिलाना है
और जब सूरज चतुर्दिक घूमेगा
बहुत दूर जाएगा
तो छाया ने पीछे रहकर
उन बिलखती हुई किरनो को बहलाना है

सूरज की मैंने अनेक रूपों में कल्पना की है—वहा उसके साथ भोग तक की भी कल्पना की

एक कटोरी धूप की मैं एक घूट म ही पी लू
और एक टुकडा धूप का मैं अपनी कोख म रख लू

और सूरज स धारण किए गभ म से सूरज के पन्ना होने तक यह जिक्र पहुचा कोठरी दर कोठरी मैं रोज सूरज को जन्म देनी

पूजा क रूप म मैंने कभी सूरज की पूजा नही की, पर यह उसके लिए कमी तन्य है कि उसके अस्तित्व को अपनी कोख के अधेरे तक भी ले गयी हू

और इसी विचार को सुनखनी के विचार म भी डाल लिया

ऐसा लगता है कि मुझ जैस कुछ लोग, चाहे किसी भी देश म हा या किसी भी शताब्दी म, ककनूमी नस्ल के ही हाते हैं।

कहते हैं—ककनूस पक्षी चील की लम्बाई चौडाई का होता है। इसके पख चमकीले किरमिची और सुनहर होते हैं। इसके स्वर म सगीत होता है और यह सदा एक ही अकेला होता है। इसकी आयु कम-से कम पाच सौ वप होती है। कुछ इतिहासकार इसकी आयु एक हजार चार सौ इकसठ वप मानते हैं। इसकी आयु का अनुमान सत्तानवे हजार दो सौ वप भी है। इसकी आयु की अवधी जब शेप हान लगती है यह सुगधित वक्षा की टहनिया इकटठी करके एक घोसला बनाता है और उसम बठकर गाता है जिसम आग पैदा होती है और यह घासले सहित उसम जल जाता है। इसकी राख म से एक नया ककनूस जन्म लेता है जा सारी सुगधित राख को समेटकर सूरज के मन्दिर की ओर जाता है और वह राख सूरज के सामने चढा देता है।

कुछ इतिहासकार इसकी मृत्यु का वणन इस प्रकार करते हैं—कि जब इसे जीवन के अतिम समय के आने का आभास हो जाता है, यह स्वय उडकर सूरज के मन्दिर म पहुच जाता है और पूजा की आग म बैठ जाता है। यह जब आग म बिलकुल राख हो जाता है तो इसकी राख मे से नया ककनूस जन्म लेता है।

मिश्र के पुरातन इतिहास के पक्षी का घर उधर बताया जाता है जिधर सूरज उदय होता है। इसलिए इतिहासकार इस पक्षी का मूल स्थान अरब या हिन्दुस्तान मानते हैं—हिन्दुस्तान अधिक क्योकि सुगधित वक्षा की टहनिया हिन्दुस्तान की भूमि के साथ जुडती हैं।

लटिन के एक कवि न ककनूस को रोमन राज्य स सबधित किया है। कुछ पादरिया ने इसे क्राइस्ट की मृत्यु और उसके पुनर्जीवित होने की वार्ता से सबधित किया है और कुछ लोग इस क्वारी मा की कोख से जन्मे क्राइस्ट के जन्म स जोडते हैं। पर मैं इस हर सच्चे लेखक के अस्तित्व स जोडना चाहती हू—चाहे वह किसी देश का हो चाहे वह किसी शताब्दी का हो।

एक डायरी की कतरनें

डायरी लिखने की मुझे आदत नही है। अनेक बार कोशिश की पर दो चार दिन से अधिक उसका नियम मुझसे सहा न गया। शायद इसकी एक उदास पृष्ठ भूमि थी—जो चेतन तौर पर नही पर अचेतन तौर पर सदा मेरे सामने आकर खडी हो जाती थी पता नही।

पृष्ठभूमि याद है—तब छोटी थी, जब डायरी लिखती थी तो सदा ताले म रखती थी। पर अलमारी के अन्दर खाने की उस चाबी को शायद ऐसे सभाल सभालकर रखती थी कि उसकी सभाल किसी की निगाह म आ गयी। (यह विवाह के बाद की बात है)। एक दिन मेरी चोरी से उस अलमारी का वह खाना खोला गया और डायरी को पढ़ा गया। और फिर मुझसे कई पक्तिया की विस्तारपूर्ण व्याख्या मागी गयी। उस दिन को भुगतकर मैंने वह डायरी फाड दी, और बाद मे कभी डायरी न लिखने का अपने आपसे इकरार कर लिया।

फिर और बडी हुई तो अपना ही इकरार अपने आपका बचकाना-सा लगने लगा। उस इकरार को तोडकर फिर डायरी लिखने के लिए मन पक्का किया। कुछ समय तक लिखती रही। और फिर अचानक वह डायरी मेरे कमरे से चोरी हो गयी। यह स्पष्ट था कि एक साधारण चोर की आवश्यकताओ म यह आवश्यकता नही हो सकती थी, यह किसी विशिष्ट व्यक्ति की ही आवश्यकता हो सकती थी। कई बरस तक मुझे उसका पश्चाताप रहा। आज भी उसकी कसक-सी बनी हुई है। जिस 'शाति बीबी' पर मुझे उस डायरी की चोरी का सदेह है अब चाहू भी तो उसका कुछ नही हो सकता।

ये दो घटनाए थी—जिनके कारण शायद मैं फिर नियमित रूप से कभी डायरी नही लिख सकी। हा, कभी-कभी एक जज्बा सा उठता है बरस छमाही कुछ पक्तिया लिख लेती हू आज उन बिखरी हुई पक्तिया को बिखरी हुई तारीखो के नीचे ढूढने चली हू तो वे भी बहुत नही मिली। जो कुछ मिली हैं वे इस प्रकार है

> बहुत समकालीन हैं केवल एक मैं
> मेरा समकालीन नही '

यह कविता की प्रथम पक्ति थी पर अभी आगे कुछ नही लिखा था। वैसे यह जानती थी कि यह सारी उपरामता स्वय से स्वय तक की बात थी। इसी स

मेल खाती हुई कुछ पक्तिया थी, अभी कागज पर नही उतारी थी पर छाती म हिल रही थी

मैं बिना मरा जनम

पुण्य की थाली म अपराध का एक शगुन है '

कि आखें अखबार के पहले पन्ने पर कापने लगी—'सोवियत ट्रप्स ऑकुपाई चेकोस्लोवाकिया सरप्राइज इनवजन टु स्मश लिबरेशन ड्राइव फेट आफ डुबचेक अनसटन 'और अभी जो स्वय' केवल अपना था, न जान किस किस का 'स्वय बन गया है—फासिज्म की भयानकता भुगती नही है, केवल सुनी है, या उसको जिन देशो ने भुगता है उनमे घूमते हुए उसके कुछ चिह्न दखे है। तब भी उसकी कल्पना भयानक है। इसीलिए समाजवाद से सपने जुडते है। उसने जिन देशा मे जो कुछ हासिल कर लिया है उससे इनकार नही, पर उसके आगे जो कुछ हासिल करने के इधर ही वह खडा हो गया है पीडा केवल उसे लेकर है

उसका पिघला हुआ चेहरा कभी अचानक बडा शासक जैसा कसा हुआ दिखाई देता है और मास के होठा पर जो शब्द आते है वे खुदकुशी करत प्रतीत होते हैं। और लगता है अगर वे खुदकुशी से बचते हैं, कागज पर उतरते है, ता कत्ल होते हैं।

कविता मेरे इद गिद एक चक्कर-सा लगाती हुई न जाने कहा चली गयी है—कहा की कहा। कागज पर सिफ अपने पगो के निशान छोड गयी है—

बन्दूक की गोली
अगर एक बार मुझे हनोई म लगती है
तो दूसरी बार प्राग मे लगती है
और एक धुआ हवा म तरता है
और मेरा मैं अठमासे बच्चे की तरह मरता है

—२२ अगस्त १९६८

' Mr Cernik said Go away and urge the best brains of the country to get out whilst they can ' यह समाचार आज मरे जन्मदिन पर दुनिया की आर से किस प्रकार की सौगात है ?

आथर कामलर न अपनी जन्मपत्री बनाने के लिए अपने जन्म के दिन छपे हुए समाचारपत्र ढूढे थे और देखने लगा कि जिस दिन उसका जन्म हुआ उस दिन दुनिया म कौन-कौन-सी घटनाए हुई था—कौन-सा जहाज डूबा था किस

बहुत स मिट्टी धूल म लिबडे हुए होत हैं और कभी कभी वह हड्डी पा जात है जिसे व सारे दिन चचाडते रहत ह

कई खुजली से खाए हुए शरीर वाले है जा सार दिन अपनी एक टाग से अपने शरीर को खुजलात रहत हैं।

सब के सब जार जोर स भौंकते है। केवल झुग्गिया और खोपडिया न ह न हे पिल्ला की भाति काटन को नही दौडत केवल टाय टाय करते रहते हैं

और रोज जब रात हाती है—सब मोहल्ले अपनी-अपनी जीभ से अपने अपने घाव चाटते है

हा सच—ये सब एक दूसरे को काट खाने को पडते है, कभी कभी पूछ भी हिलात है खासकर चुनावा क दिना म जब इनके आगे कोई बासी बची हुइ रोटिया के टुकडे फेंक देता है या खयाली पुलाव के कुछ निवाले

जन्मी गुजरावाला मे थी पर उम्र दो शहरो म गुजारी है—आधी लाहौर म आधी दिल्ली म—आधी गुलाम हिन्दुस्तान म आधी आजाद हिन्दुस्तान म।

पर जिस पक्ष स किसी शहर की पोर्टेट का सवाल होता है, यह ऊपरी पोर्ट्रेट जसी लाहौर की देखी थी वसी ही दिल्ली की देखी।

—२१ अगस्त, १९७०

बहुत सिगरेट पीती हू—और कभी किसी दिन मुझे ह्विस्की भी अच्छी लगती है। इसे रोज आदत के तौर पर नही पी सकती, पर किसी दिन अचानक इसकी तलब होती है। जानती हू—य दोना चीजें जब किसी औरत के साथ जुडकर एक जिक्र बनती हैं तो यह जिक्र उस औरत की शख्सियत को गभीरता शब्द से नहीं जोडता।

इसके लिए एक अजीब तुलना मेरे सामने आयी है। आखिर सिख घरान म जन्मी हू तुलना के लिए उसी मजहब के किसी चिह्न का सामने आ जाना स्वाभाविक भी है। लगता है—जसे मीठा हलवा बनाकर जब गुरु ग्रथ के सामने रखा जाता है और हलव की परात म तलवार फेर दी जाती है तो वह साधारण हलवे के स्थान पर उसी क्षण कडाह प्रसाद' बन जाता है, उसी प्रकार मेरे हाथ मे लिया हुआ सिगरेट या ह्विस्की का गिलास जब मेरे माथ के 'सोच' को छू लेता है वह कुछ और हो जाता है पावनता सरीखा अनुभूति की तीव्रता और विशालता उसमे से तलवार की तरह गुजर जाती है तो वह साधारण हलवे की तरह उसी क्षण प्रसाद बन जाता है।

—३१ अगस्त १९७२

आज का समाचारपत्र कह रहा है—रामधारीसिंह दिनकर नही रहे।

एक ही सप्ताह हुआ है—आज २८ तारीख है और उस दिन १६ तारीख थी—स्टार बुक्स के समारोह के अवसर पर दिनकर मिले थे। मैं हॉल से बाहर आ रही थी और वह बाहर आकर अपनी कार म बठ चुके थे। दूर से देखकर हाथ के इशारे स उन्होंने पास बुलाया। देविन्दर भी मेरे साथ था। मैं उनकी कार के शीशे के पास पहुंची तो शीशे को नीचे उतारकर अपनी बांह बाहर निकालकर मेरा हाथ पकडकर कहने लगे— देखो ! मर न जाना ! तुम मर गयी तो इस देश की हरियाली मर जाएगी।' जानती थी वह बीमार रहते हैं मन भर आया। कहा—'पर आप जीवित रहें यह बात कहने के लिए। आपके सिवाय यह बात और कोई नहीं कह सकता '

मेरा मन हिल ही गया था पास खडे हुए देविन्दर का मन हिल गया। कहने लगा— दीदी ! हमारी भाषा मे ऐसे लोग पैदा क्यो नही होते ?

आज दिनकर चले गए हैं—केवल हिन्दी भाषा के पास से ही नहीं, हिन्दुस्तान से भी खो गए हैं आखें भर भर आ रही हैं

—२५ अप्रल, १६७४

आज 'सारिका' के कमलेश्वर का पत्र आया है कि कई वर्ष पहले सारिका मे छपे मेरा हमदम मेरा दोस्त लेखो का वह पुस्तक रूप मे एक सग्रह करना चाहता है और उसने मेरे लेख को सग्रह मे सम्मिलित करने की अनुमति मागी है। यह लेख मैंने कई वर्ष हुए नवतेजसिंह के सबध म लिखा था पर तब का सच आज का सच नही है वह समय के साथ एक भुलावा सिद्ध हुआ है। मैंने कमलेश्वर को अभी पत्र लिख दिया है कि वह मेरा लेख इस सग्रह म सम्मिलित न करे, क्योकि अब न कोई मेरा हमदम है न दोस्त। इस पुस्तक म यह लेख सम्मिलित हो जाता तो एक सौ रुपया मिलता पर यह झूठ की कमाई होती। नहीं सौ रुपया नही चाहिए, झूठ की कमाई नही चाहिए।

—६ मई १६७४

एक रात

कई बिलकुल बेगानी बातें न जाने कसे बिलकुल अपनी हो जाती है और अपने रक्त मास मे भीग जाती है। एक बार रात को महाभारत पढते पढते सो गयी—सपने मे देखा, एक कबूतर उडता हुआ आया और उसने मेरी गोद म शरण ली। देखा—उसके पीछे उडता हुआ एक बाज भी था और वह मुझस

उस कबूतर को माग रहा था। कबूतर अपनी जान की रक्षा की माग करत हुए मसक्कर मेरे साथ चिपट गया था, कि बाज़ ने कहा—अगर कबूतर नहा दनी ता इसके बदले म अपने शरीर का मास तोलकर दे दें। मैंने अपन शरीर से मास काटकर उसके बराबर वज़न का तोलना चाहा पर कबूतर और भारी, इतना भारी कि मैं सारी-की सारी उसके बदले म मरन को तयार हो गयी एक हसी कमरा म गूज गयी और इसके साथ ही सारे शरीर म महसस हुआ कि यह कबूतर मेरी लेखनी का प्रतीक है, और एक विरोध इस जान से मार देने क लिए इसके पीछे पडा हुआ है।

मैंने कबूतर को और भी जोर से अपने शरीर से चिपटा लिया कि इतने म मरी आखें खुल गयी सामने महाभारत का वह पन्ना खुला हुआ था जिसके बारहवें अध्याय म अग्नि देवता कबूतर का वेश बदलकर राजा उशीनर स शरण मागने आता है और उशीनर उसकी जगह अपने शरीर का मास देने के लिए तैयार हो जाता है। पर उसके पीछे पडे हुए बाज को वह कबूतर नहीं देता

इस घटना से मैंने अपने मन की शिद्दत को केवल पहचाना ही नहीं—एक रात जसे आखा से देख लिया।

एक दिन

वह भी एक दिन था—जब मैंने अपने सबध म विस्तार से लिखने की जगह साचा था—कभी जब मैं अपनी आत्मकथा लिखूगी केवल दस पक्तिया लिखूगी और वे पक्तिया मैंने कागज पर लिखकर रख ली थी। व पक्तिया आज भी मेरे सामन हैं और आज भी वे उतनी ही सच हैं जितनी उस दिन लिखत समय थी। वे पक्तिया हैं

मेरी सारी रचना—क्या कविता और क्या कहानी और उपन्यास—मैं जानती हू एक गर-कानूनी बच्चे की तरह है।

मेरी दुनिया की हकीकत ने मेरे मन के सपने स इश्क किया और उनके वर्जित मल से यह सब रचना पदा हुई।

जानती हू—एक गैर-कानूनी बच्चे की किस्मत इसकी किस्मत है और इसे सारी उम्र अपने साहित्यिक समाज के माथे के बल भुगतने हैं।

मन का सपना क्या था कौन था इसकी व्याख्या म जाने की आवश्यकता नही है। वह कमबख्त बहुत हसीन होगा निजी जिन्दगी से लेकर कुल आलम की बेहतरी तक की बातें करता हागा तब भी हकीकत अपनी औकात को भूलकर

उससे इश्क कर बैठी। और जो रचना पैदा हुई—हमेशा कुछ कागजों में लावारिस भटकती रही '

और आज भी मेरा बयान है—ये दस पंक्तियां मेरी पूरी और लम्बी आत्मकथा हैं

एक कविता

चक न० छत्तीस उपन्यास मैंने १९६३ में लिखा था, १९६४ में छपा तो अफ़वाह फैल गयी कि पंजाब सरकार इसे 'बैन कर रही है' पर हुआ कुछ नहीं। यह १९६५ में हिन्दी में भी छपा, और १९६६ में उर्दू में भी।

इस उपन्यास को फिल्म के लिए सोचा तो रेवतीसरन शर्मा ने कहा—नहीं यह उपन्यास समय से एक शताब्दी पहले लिखा गया है हिन्दुस्तान अभी इसे समझ नहीं सकता'—और बासु भट्टाचार्य के शब्द थे—'इस उपन्यास पर जब फिल्म बनेगी, वह हिन्दुस्तान में पहली ऐडल्ट फिल्म होगी।' और इस उपन्यास का जब मेरी दोस्त कृष्णा ने १९७४ में अंग्रेजी में अनुवाद किया तो उसको रीडिंग के लिए मैंने जब इसे दोबारा पढ़ा तो इसकी पात्र 'अलका' मुझ पर इस तरह छा गयी जिस तरह शायद उपन्यास लिखते समय भी नहीं छायी थी

इसका पात्र कुमार' जब 'अलका' को बताता है कि वह शरीर की भूख मिटाने के लिए कुछ दिन एक ऐसी औरत के पास जाता रहा था जो रोज के बीस रुपये लेती थी और जब 'अलका' कहती है—सोच रही हूं कि वह औरत भी मैं होती जिसके पास आप रोज बीस रुपये देकर जाते थे ' तो बहुत पुराना इस उपन्यास का स्रोत याद आया—एक बार इमरोज ने कहा था कि जिस्म की भूख के हाथों पीड़ित होकर मैंने एक बार बाजार की किसी औरत के पास जाना चाहा था, तो सहज मन मेरे मुंह से निकला था—'अगर तुम ऐसी औरत के पास जाते, तो मेरा जी करता है वह औरत भी मैं ही होती '

पहचान आयी—ये शब्द जो अलका' ने कहे यह केवल अमृता ही कह सकती थी और कोई औरत नहीं अस्वाभाविक हालत की स्वाभाविकता शायद और किसी औरत के लिए संभव नहीं हो सकती अलका उर्फ अमृता

भले ही कहानी के हर पात्र के साथ लेखक का गहरा साझा होता है पर एक दूरी हर साझे का हिस्सा होती है। अलका को पढ़ते हुए लगा—वह दूरी कहीं नहीं है उस रात (७ सितम्बर, १९६४ की रात) मैंने अलका को संबोधित करके एक कविता लिखी—'पहचान

कई हजार चाबिया मेरे पास थी
और एक एक चाबी एक एक दरवाजे का खोल देती थी
दरवाजे के अन्दर—किसी की बठक भी होती थी
और मोटे पर्दे म लिपटा किसी का सोने का कमरा भी
और घरवाला के दु ख
जो उनके ही होते थे पर किसी समय मेरे भी होते थे
मेरी छाती की पीडा की तरह
पीडा जो दिन के समय जागू तो जाग पडती थी
और रात के समय सपना म उतर जाती थी
पर फिर भी
परो के आगे रक्षा की रेखा जसी एक लक्ष्मण रेखा होती थी
और जिसकी बदौलत मैं जब चाहती थी
घरवालो के दु ख घरवाला को देकर
उस रेखा से लौट जाती थी
और आते समय लोगो के आसू लोगा को सौप आती थी
देख ! जितनी कहानिया और उनके पात्र हैं
उतनी ही चाबिया मेरे पास थी
और जिनके पीछे
हजारो ही घर जो मेरे नही पर मेरे भी थ
शायद वे कही अब भी हैं
पर आज एक चाबी का कौतुक
मैंने तेरे घर को खोला तो देखा
वह लक्ष्मण रेखा मेरे परो के आगे नही, पीछे है
और सामने, तेरे सोने के कमरे म तू नही—मैं हू

यह मेरी एकमात्र एसी कविता है जो अपने ही रचे पात्र को सबोधित करके मैंने लिखी है।

एक त्योरी

आज भी सामने देख सकती हू—एक त्योरी है, मेरे पिता के माथे पर पडी हुई नही, माथे पर ठहरकर चालीस वर्षों से मुझे देख रही है मेरी निगहबान, मेरी नजर सानी कर रही है।

१६३६ के आरम्भ की बात है जब मेरी पहली किताब छपी थी। महाराजा कपूरथला ने मेरी किताब को एक बुजुर्गाना प्यार देते हुए दो सौ रुपय मेरे नाम भेजे थे। और फिर थोड़े दिन बाद महारानी नाभा ने (वह कभी मेरे पिताजी की शिष्या रही थी) मुझे एक साडी का पासल उस किताब की प्रशसा व्यक्त करते हुए भेजा था। ये दोना चीजें डाक द्वारा आयी थी। और फिर एक दिन, जब डाकिये ने घर का दरवाजा खटखटाया, मेरे बाल-मन ने उसी तरह के एक और मनीआडर या पासल की आस कर ली, मुह से निकला—'आज फिर कोई इनाम आया है।'—और मुझे आज तक, अपने शरीर के कम्पन सहित, उसी तरह वह त्यारी याद है जो मेरी ओर दखकर मेरे पिता के माथे पर पड गयी थी।

उस दिन इतना नही समझा था कि मेरे पिता मुझ म जसा व्यक्तित्व देखना चाहते थे मैं अपन उस एक वाक्य से उससे बहुत छोटी हो गयी थी, बस इतना समझा था कि ऐसी आशा या ऐसी कामना गलत बात है। यह क्या गलत है और यह किस जगह स एक लेखक को छोटा कर जाती है यह बहुत समय बाद जाना।

और जब जाना—तब मेरे पिता के माथे के स्थान पर मेरा अपना माथा मेरा निगहबान बन गया। उसने मेर खयालो की ऐसी रक्षा की कि फिर कभी मुझे अचेतन तौर पर भी ऐसा खयाल नही आया।

आज सोचती हू—दुनिया से कुछ भी लेने के खयाल से वह एक त्यारी मुझे कस सदा के लिए मुक्त कर गयी, स्वतन्त्र कर गयी तो उस त्योरी पर प्यार आ जाता है। हो सकता है—उस दिन वह मेरे पिता के माथे पर न पडती, तो मैं कभी उस जसे विचार स जिन्दगी म अपना अपमान कर लेती। पर खुश हू मुझे उस पिता का माथा नसीब हुआ था जिस पर वह त्यारी पड सकती थी।

एक और रात की बात

यह भी एक रात की बात है—आज से कोई चालीस बरस पहले की एक रात—मेरे विवाह की रात जब मैं मकान की छत पर जाकर अधेरे मे बहुत रोयी थी। मन मे केवल एक ही बात आती थी—अगर मैं किसी तरह मर सकू। पिताजी को मेरे मन की दशा ज्ञात थी इसलिए ढूढते हुए छत पर आए। मैंने एक ही मिन्नत की—मैं विवाह नही करूगी।

बरात आ चुकी थी रात का खाना हो चुका था कि पिताजी का एक सदशा मिला कि अगर कोई रिश्तदार पूछे तो कह देना कि आपने इतने हजार रुपया

नक्द भी दहेज म दिया है।

इस विवाह से मेर पिताजी को गहरा सताप था, मुझे भी। पर इस सदेश को पिताजी न एक इशारा समझा। उनके पास इतना नक्द रुपया हाथ म नही था इसलिए घबरा गय। मुझसे कहा। बस उसी के कारण मरे मन म विचार उठता था—अगर मैं आज रात मर सकू।

कई घटा की हमारी इस घबराहट को उस रात मेहमान के तौर पर आयी हुई मरी मृत मा की एक सहेली न कुछ भाप लिया और अकेल म होकर अपने हाथ की सारी सोन की चूडिया उतारकर उसन मर पिताजी के सामन रख दी। पिताजी की आखें भर आयी। पर यह सब कुछ देखना मुझे मरने स भी कठिन लगा

फिर मालूम हुआ—यह सन्देशा किसी प्रकार का इशारा नही था उन्होंने नक्द रुपया नही चाहा था सिफ कुछ रिश्तेदारा की तसल्ली करने के लिए यह बात फैलायी थी। मा की सहेली न व चूडिया फिर हाथा म पहन ली पर ऐसा प्रतीत होता है—चूडिया उतारने का वह क्षण दुनिया की अच्छाई का प्रतीक बनकर सदा के लिए कही ठहर गया है विश्वास टूटते हुए दखती हू परन्तु निराशा मन के अन्त तक नही पहुचती इधर ही राह म कही रुक जाती है। और उसके आगे मन के अन्तिम छोर के निकट दुनिया की अच्छाई पर विश्वास बचा रह जाता है

अन्तिम पक्तिया

बहुत समय हुआ ग्रीक पैशन' म एक गडरिय लडके की वार्ता पढी थी जो क्राइस्ट का नाटक खलने के लिए क्राइस्ट चुना जाता है। पर इस पात्र की भूमिका अदा करन के लिए वह साधना करते करते पात्र के अस्तित्व म विलीन हो जाता है इतना कि सारे गाव का विरोध सहन कर भी उसकी दृष्टि म जो न्याय है जब वह उसके लिए लडता है तो गाववाले उस सचमुच पत्थर मार मारकर मार देते हैं। एक ऐसा व्यक्ति जिसने उसका अन्तर-बाह्य पहचान लिया था उसे एक पहाडी पर दफन करते समय कहता है—आज उसका नाम बफ के ऊपर लिखा गया है। बफ पिघलेगी तो उसका नाम नदी नाला के पानिया पर लिखा हुआ होगा।

इसी बात को अगर अपने लिए कहू तो कहना चाहूगी—मर पास जो कुछ था अगर आज बफ स दब गया है तो यह बफ जब पिघलेगी इसके नदी नाले

चे होंगे जो एक ईमान से, हाथों में नये कलम थामेंगे, और उन कलमों की शिद्दत में मेरा वह कुछ भी सम्मिलित होगा जो आज चुप की बर्फ के नीचे दबा हुआ है।

यथार्थ से यथार्थ तक

आत्मकथा को प्राय चमकती-दमकती एकांगी सच्चाई समझा जाता है—आत्म-श्लाघा का कलात्मक माध्यम। पर बुनियादी सच्चाई को लेखक की अपनी आवश्यकता मानकर मैं कहना चाहूंगी—'यह यथार्थ से यथार्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया है।'

एक कुछ वह होता है जो बिना कोई चेष्टा किये सामने दिखाई पड़ जाता है और एक केवल गौर से देखने पर दिखाई देता है, और एक विचारों की मिट्टी को छान छानकर मिलता है। यथार्थ वह भी होता है वह भी और वह भी।

हर कला निर्माण में से प्रति निर्माण का नाम है। यह यथार्थ का प्रति-निर्माण भी यथार्थ है—सच्चाई की कोख में पड़कर फिर उस कोख में से निकली हुई सच्चाई। यथार्थ का प्रति निर्माण यथार्थ से यथार्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया है।

उपन्यास-कहानी का पाठक—पात्रों के चेहरों की कल्पना करता है उनके दिलों की हलचल से उनके नक्श नक्श चितवता है पर किसी की आत्मकथा का पाठक अपना सारा ध्यान एक ही जाने हुए चेहरे पर केन्द्रित करता है। इसमें लेखक और पाठक परस्पर सम्मुख होते हैं। यह लेखक का अपने घर में पाठक को निजी बुलावा होता है—सकोच की डयोढी के भीतर की ओर। और यह केवल तब सभव होता है जब लेखक का साहस उसके किसी सच की अपेक्षा कम न हो। इसमें कोई झूठ मेहमान का नहीं मेज़बान का अपना अपमान होता है।

लेखक दो प्रकार के होते हैं—एक जो लेखक होते है और दूसरे जो लेखक दिखना चाहते हैं। जो है दिखने का यत्न उनको आवश्यकता नहीं होता, वह है। और उनके अपने अस्तित्व की सच्चाई सच्चाई से कुछ भी कम स्वीकार नहीं कर सकती।

केवल उस पार के किनारे का यथार्थ जिस कला की नदी को चीरकर उस पार के किनारे का यथार्थ बनता है वह प्रक्रिया इस आत्मकथा में भी है। यह रचना की अपनी प्रक्रिया है।

यू तो यह शीषक मैंने अपनी उस लेखमाला का रखा हुआ है जो आजकल प्रधान-मत्री इन्दिरा गाधी पर बन रही फिल्म के बारे म लिखती हू। यह फिल्म बासु भट्टाचाय बना रहे हैं। मैं सिफ इस फिल्म की रचनात्मक त्रिया लिखती हू। इन्दिरा-जी की शूटिंग के समय साथ साथ रहती हू। उनस दश की हालत के बार मे जो बातचीत होती है वह ता लिखती ही हू पर साथ ही शाट कसे और क्या सोचकर लिये जात है इ दराजी के यक्तित्व के गभीर पहलू आम साधारण बाता म से भी कैसे उभरते हैं या कुछ वे बातें जो फिल्म का हिस्सा नही बनती पर बड महत्त्व की होती हैं उन्हे भी जितनी वे पकड म आ सकें लिखन का यतन करती हू। उदाहरण के तौर पर—उनके कमरे की एक दीवार पर नेहरूजी और मोती-लालजी के कुछ चित्र हैं। बासु दा न उनके शाट लेते समय इन्दिराजी से कहा— इन तसवीरा को देखते हुए जस अचानक उन पर कुछ धूल पडी हुई दिखाई द और आप अपनी धोती के पल्ले स उसे पोछ रही हा। स्पष्ट है कि बासु दा इस शाट म इ दराजी को समय की धल पोछत हुए दिखाना चाहत थे। पर इ दरा जी ने निश्चित स्वर मे 'नहीं' कह दिया। कहन लगी डस्टर लेकर पोछ सकती हू पर अपनी धोती के पल्ले से नही तसवीर चाह किसी भी खास व्यक्ति की हो यह सवाल नही है जो अच्छे लगते हैं व हर समय खयाला में रहते हैं तसवीरा म नहीं। धोती के पल्ले से पोछू तो मुझे धोती बदलनी पडेगी मुझे धूल स कोई प्यार या श्रद्धा नही है '

ठीक है जो उनके विचार म नही है वह किसी शॉट म नही आना चाहिए। उन्होंने डस्टर से तसवीरें पोछी और बासु दा ने शाट ल लिया। पर यह उनका दष्टिकोण फिल्म म नही आएगा, और बहुत कुछ जो फिल्म म नही आ सकता उसे समझने और जानन मे मैं इस फिल्म का माहौल और इसकी तयारी के समय का हाल लिखती हू।

इसकी एक शूटिंग के समय मैंने उनस पछा था इन्दिराजी ! आप औरत है, क्या कभी इस बात को लेकर लोगो ने आपके रास्ते म रुकावट पदा की है ? तो उनका जवाब था, 'इसके कुछ एडवा टेजिज भी होते हैं कुछ डिसएडवान्टेजिज भी। पर मैंने कभी इस बात पर गौर नही किया। औरत-मद के फक म न पडकर मैंने

अपने आपको हमेशा इसान सोचा है। शुरू से जानती थी—मैं हर चीज के काबिल हू। कोई समस्या हो मर्दों से ज्यादा अच्छी तरह सुलझा सकती हू—सिवाय इसके कि जिस्मानी तौर पर बहुत वजन नही उठा सकती और हर बात म हर तरह काबिल हू। इसलिए मैंने अपने औरत होने का कभी किसी कमी के पहलू से नही सोचा। जिन्होंने शुरू म मुझे सिर्फ औरत समझा था मेरी ताकत को नही पहचाना था वह उनका ममझना था मेरा नही लोग कुछ बातें करते होंगे, वस्तुत मी तो मुझ तक पहुचती ही नही। जो पहुचती हैं उनका मैं कोई महत्व नही समझती।'

दृष्टिकोण मेरा भी यही था। पर इन्दिराजी के लिए जो मन की सहज अवस्था है मेरे जसे साधारण इन्सान के लिए एक उस मजिल की तरह थी जिसका रास्ता बडा दुगम हो। ठीक है अब उतना कठिन नही पर मेरी यह जग अभी भी जारी है इस शीर्षक को मैंने इन्दिराजी की राजनीतिक जद्दोजहद के सिलसिले म इस्तेमाल किया था पर यहा अपने निजी जीवन के सबध म इस्तेमाल कर रही हू चाहे उसके मुकाबले मे इसका महत्त्व बहुत कम है।

बहुत पुरानी बात है जब पटेलनगर के मकान म अभी बिजली नही लगी थी, और मैं दिल्ली रेडियो म नौकरी करती थी। पडोसी के घर म एक रेडियो था जो बटरी से चलता था और मेरे दोनो छोटे छोटे बच्चे वहा चले जाते थे शाम को मेरी आवाज सुनने के लिए। पर एक दिन मैं रात को जब घर आयी तो मेरा बेटा मुझसे कहने लगा—'मामा! एक बात मानेंगी? आप भोलू के रेडियो पर मत बोला करें।'

मालूम हुआ कि मेरे बेटे से भोलू की लडाई हो गयी थी—और जिसके घर वह नही जा सकता था वहा मेरी आवाज भी नही जानी चाहिए थी।

तब अपने चार बरस के बेटे की इस बात पर हस दी थी पर आज यह बात याद आयी है तो हस नही सकती। सोचती हू—काश, मेरी यह किताब भी उनके हाथो म न जाए जिन्होंने इसके एक एक अक्षर को मिट्टी मे लथेडना है।

कुछ दोस्तो की सलाह है—मैं इस किताब को दूसरी भाषाओ म छपवा लू पर पजाबी मे नही। पर जानती हू मेरी भाषा के गभीर पाठक यह नही चाहेंगे, इसलिए मैं, किसी भी मूल्य पर अपनी भाषा को और उसके पाठकों को छोटा नही करना चाहूगी।

सो मूल्य चुकाने के लिए तयार हू।

क्या यह कयामत का दिन है ?

जिन्दगी के कई वे पल जो वक्त की क
से जन्म और वक्त की कब्र में गिर ग
आज मेरे सामने खड़े हैं

यह सब कब्रें कैसे खुल गई ? और य
पल जीते जागते कब्रों में से कैसे निक
यह जरूर कयामत का दिन है